www.vitragvani.com

ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

मानव जीवन का महान कर्तव्य

सम्यग्दर्शन

(भाग-5)

पूज्यश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में से
सम्यग्दर्शन सम्बन्धी विभिन्न लेखों का संग्रह
तथा मुमुक्षुओं द्वारा लिखित सम्यग्दर्शन सम्बन्धी लेख

गुजराती संकलन :
ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, जिला भीलवाड़ा (राज०)

प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस.लि., वी.एल. मेहता मार्ग,
विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400056; फोन : (022) 26130820

सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)-364250; फोन : 02846-244334

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि :

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
   फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां,
   निर्मला कोन्वेन्ट रोड, राजकोट-360007
   फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

यह एक निर्विवाद सत्य है कि विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है एवं निरन्तर उसी के लिए यत्नशील भी है; तथापि यह भी सत्य है कि अनादि से आज तक के पराश्रित प्रयत्नों में जीव को सुख की उपलब्धि नहीं हुई है।

धार्मिक क्षेत्र में आकर इस जीव ने धर्म के नाम पर प्रचलित अनेक प्रकार के क्रियाकाण्ड-व्रत, तप, नियम, संयम इत्यादि अङ्गीकार करके भी सुख को प्राप्त नहीं किया है। यही कारण है कि वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा की सातिशय वाणी एवं तत्मार्गानुसारी वीतरागी सन्तों की असीम अनुकम्पा से सुखी होने के उपाय के रूप में पर्याप्त दशानिर्देश हुआ है।

वीतरागी परमात्मा ने कहा कि मिथ्यात्व ही एकमात्र दु:ख का मूल कारण है और सम्यग्दर्शन ही दु:ख निवृत्ति का मूल है। मिथ्यात्व अर्थात् प्राप्त शरीर एवं पराश्रित विकारी वृत्तियों में अपनत्व का अभिप्राय /इसके विपरीत, सम्यग्दर्शन अर्थात् निज शुद्ध-ध्रुव चैतन्यसत्ता की स्वानुभवयुक्त प्रतीति।

इस वर्तमान विषमकाल में यह सुख-प्राप्ति का मूलमार्ग प्राय: विलुप्त -सा हो गया था, किन्तु भव्य जीवों के महान भाग्योदय से, वीतरागी प्रभु के लघुनन्दन एवं वीतरागी सन्तों के **परम उपासक अध्यात्ममूर्ति पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** का इस भारत की वसुधा पर अवतरण हुआ। आपश्री की सातिशय दिव्यवाणी ने भव्य जीवों को झकझोर दिया एवं क्रियाकाण्ड की काली कारा में कैद इस विशुद्ध आध्यात्मिक दर्शन का एक बार पुनरोद्धार किया।

www.vitragvani.com

आपश्री की सातिशय अध्यात्मवाणी के पावन प्रवाह को झेलकर उसे रिकार्डिंग किया गया जो आज सी.डी., डी.वी.डी. के रूप में उपलब्ध है। साथ ही आपश्री के प्रवचनों के पुस्तकाकार प्रकाशन भी लाखों की संख्या में उपलब्ध है, जो शाश्वत् सुख का दिग्दर्शन कराने में उत्कृष्ट निमित्तभूत है। इस उपकार हेतु पूज्यश्री के चरणों में कोटिश नमन करते हैं।

इस अवसर पर मुमुक्षु समाज के विशिष्ट उपकारी **प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन** के प्रति अपने अहो भाव व्यक्त करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है।

जिन भगवन्तों एवं वीतरागी सन्तों के हार्द को स्पष्ट करनेवाले आपके प्रवचन ग्रन्थों की शृंखला में ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, सोनगढ़ द्वारा संकलित प्रस्तुत '**मानव-जीवन का महान कर्तव्य-सम्यग्दर्शन भाग-5**' प्रस्तुत करते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राज.) द्वारा किया गया है।

सभी आत्मार्थी इस ग्रन्थ के द्वारा निज हित साधें — यही भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

निवेदन

सम्यग्दर्शन सम्बन्धी पुस्तकों की श्रेणी में से आज पाँचवी पुस्तक जिज्ञासुओं के हाथ में प्रदान करते हुए आनन्द होता है। अहो! सच्चा सुखी जीवन प्रदान करके मोक्ष का मार्ग खोलनेवाला सम्यग्दर्शन! इसकी क्या बात! इसकी जितनी महिमा करें उतनी कम है। श्री गुरुदेव ने ऐसे सम्यक्त्व का मार्ग स्पष्ट करके मुमुक्षु जीवों को निहाल किया है। आत्मा का ऐसा स्वरूप दर्शाकर वे निरन्तर भव्य जीवों को सम्यक्त्व के मार्ग में ले जा रहे हैं। आज सम्यग्दृष्टि जीवों का दर्शन और सम्यक्त्व की आराधना का सुअवसर आपश्री के प्रताप से प्राप्त हुआ है, वह आपश्री का अचिन्त्य उपकार है।

सम्यग्दर्शन, वह आत्मा का सच्चा जीवन है। मिथ्यात्व में तो निजस्वरूप की सच्ची सत्ता ही दिखायी नहीं देती थी, इसलिए उसमें भावमरण से जीव दु:खी था और सम्यक्त्व में अपने स्वरूप का स्वाधीन उपयोगमय आनन्द भरपूर अस्तित्व स्पष्ट वेदन में आता है, इसलिए सम्यक्त्व जीवन परम सुखमय है ऐसा सुन्दर निजवैभव सम्पन्न जीवन प्राप्त करने के लिये हे मुमुक्षु जीवों! श्री गुरुओं द्वारा बताये हुये आत्मा के परम महिमावन्त स्वरूप को लक्ष्यगत करके, बारम्बार गहरी भावना से उसका चिन्तवन करके, आत्मरस जगाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करो... यही मुमुक्षु जीवन की सच्ची शोभा है।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी — **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**

वीर संवत् २४९९ — सोनगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका

www.vitragvani.com

व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और

www.vitragvani.com

हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय**

www.vitragvani.com

मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ।

www.vitragvani.com

स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य

www.vitragvani.com

से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980)

www.vitragvani.com

वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार

www.vitragvani.com

से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

❖ एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता। ❖ प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। ❖ उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं। ❖ उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है। ❖ पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं। ❖ भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती। ❖ भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। ❖ चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। ❖ स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है। ❖ ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

अनुक्रमणिका

लेख	पृष्ठ
धर्मात्मा पीते हैं चैतन्य के आनन्दरस का अमृत.....	१
मोक्षसुख की मजा की बात.....	२
शुद्धोपयोग का फल-अतीन्द्रिय महान सुख.....	६
मोक्ष को साधने के लिये.....	९
सम्यग्दर्शन होने का वर्णन.....	१३
तीर्थंकरों के मार्ग में प्रवेश करने का द्वार.....	२०
भूतार्थदृष्टि से ही सच्चा आत्मा दिखता है.....	२७
अत्यन्त मधुर चैतन्यरस.....	३५
सन्तों की पुकार.....	३६
सन्त बुलाते हैं-आनन्द के धाम में.....	४०
सिंह के बच्चे की बात.....	४३
नमस्कार हो... ज्ञानचेतनावन्त मुनिभगवन्तों को.....	४५
आत्मा की कीमत कम मत आँक.....	५०
अभी ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर.....	५३
एक हाथी अद्भुत पराक्रम.....	६३
सिंहपर्याय में सम्यग्दर्शन.....	७१
समयसार का मङ्गलाचरण.....	७५
चलो, चलो... सब कुन्दप्रभु के साथ सिद्धालय में जायें.....	७६
साधक के अन्तर में समयसार उत्कीर्ण है.....	७८
करना सो जीना.....	८०
अनुभवरस-घोलन.....	८१

www.vitragvani.com

लेख	पृष्ठ
सम्यक्त्व-प्रेरक १०८ सुगम प्रश्नोत्तर.....	८७
सम्यक्त्व के पिपासु की एक ही धुन.....	१००
स्वभाव की महिमा का घोलन करते-करते.....	१०८
सम्यग्दर्शन : उस सम्बन्धी मुमुक्षुओं का घोलन.....	११६
आत्मसन्मुख जीव की सम्यक्त्व साधना.....	१२४
परमात्मस्वरूप का आह्वान करता सम्यग्दर्शन प्रगट होता है.....	१४१
सच्ची शान्ति की शोध में.....	१४८
सम्यक्त्वसन्मुख जीव की अद्‌भुत दशा.....	१५४
अन्ततः उसका साक्षात् अनुभव करता है.....	१६२
जय हो सम्यग्दर्शन धर्म की!.....	१६८
परमात्मा का पुत्र.....	१८२
सम्यग्दृष्टि की उज्ज्वल परिणाम.....	१८८
मैं तो ज्ञातादृष्टा हूँ.....	१९६

ॐ

परमात्मने नमः

मानव जीवन का महान कर्त्तव्य

सम्यग्दर्शन

(भाग-5)

धर्मात्मा पीते हैं चैतन्य के आनन्दरस का अमृत

अहो जीवों! चैतन्य का आनन्द-स्वाद और राग का आकुल-स्वाद, इन दोनों को भेदज्ञान द्वारा अत्यन्त भिन्न जानो, भेदज्ञान के बल से सर्व विकल्पों से पृथक् वर्तन ऐसा ज्ञान, वह निर्विकल्प चैतन्यसत्ता अमृत से भरपूर है। अन्तर में भेदज्ञान द्वारा तुम ऐसे चैतन्यरस का पान करो। सच्चा भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन होने पर धर्मात्मा को आत्मा के चैतन्य-अमृत का निर्विकल्प स्वाद वेदन में आता है। अहो! वीतरागी सन्तों ने ज्ञान और राग का भेदज्ञान कराकर, आत्मा के निर्विकल्प आनन्दरस का पान कराया है। निर्विकल्प आनन्द ही सच्चा सुधारस है; धर्मात्मा, भेदज्ञानरूपी अंजली द्वारा उस आनन्दरस का पान करते हैं।

www.vitragvani.com

मोक्षसुख की मजा की बात

[प्रवचनसार, गाथा 64, कार्तिक शुक्ल तेरस]

अहा! मोक्षसुख की मजा की बात सुनते हुए मुमुक्षु को सहज उल्लास आता है : ज्ञानी के श्रीमुख से आत्मा के अतीन्द्रिय स्वभावसुख की वार्ता सुनते हुए जिसके अन्तर में उल्लास आता है, वह मुमुक्षु जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसे मोक्षसुख की अद्भुत बात दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस भरतक्षेत्र में सुनाते थे, वही बात गुरुदेव आज अपने को सुनाते हैं... आओ, आनन्द से उसका स्वाद चखें।

श्री अरिहन्त भगवन्तों को शुद्धोपयोग के फल में प्रगट हुए महा अतीन्द्रियसुख की परम महिमा बतलाकर आचार्यदेव ने कहा कि अहो! आत्मा का ऐसा जो परम सुख, उसकी श्रद्धा करनेवाला सम्यग्दृष्टि है, आसन्नभव्य है; अपने में ऐसे इन्द्रियातीत चैतन्यसुख का स्वाद जिसने चखा है, वही सर्वज्ञ के अतीन्द्रिय पूर्ण सुख की परमार्थ श्रद्धा कर सकता है। ऐसे सुख की जिसे खबर नहीं और इन्द्रिय-विषयों में ही सुख की लालसा कर रहे हैं, वे जीव आसन्नभव्य नहीं; वे तो विषयों में आकुल-व्याकुल वर्तते हुए दु:ख में तड़पते हैं और घोर संसार में भटकते हैं।

अतीन्द्रिय आत्मा को जाननेवाला प्रत्यक्षज्ञान तो उन्हें नहीं, एकान्त परोक्षबुद्धि द्वारा इन्द्रियों के साथ ही उन्हें मैत्री वर्तती है; महा मोह के अतिशय दु:ख के कारण वे जीव वेग से बाह्य विषयों को रम्य मानकर उस ओर झपटते हैं, परन्तु उनमें सच्चे सुख की गन्ध भी नहीं मिलती, इसलिए वे जीव एकान्त दु:खी ही हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि अरे! इन्द्रियों की ओर ही जिनका

www.vitragvani.com

ज्ञान एकाकार वर्त रहा है, उन जीवों ने अतीन्द्रियसुख से भरपूर आत्मा की मित्रता छोड़ दी है और जड़ इन्द्रियों के साथ मित्रता की है। उन्हें इन्द्रियाँ जीवित हैं, परन्तु अतीन्द्रिय भगवान आत्मा तो मानो मर गया हो—ऐसा उन्हें दिखता नहीं। इन्द्रियाँ और उनके विषय ही उन्हें दिखते हैं परन्तु उनसे पार अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उन्हें नहीं दिखता। अरे! जहाँ सुख भरा है, वहाँ मित्रता नहीं करता और जहाँ एकान्त दुःख है, वहाँ मित्रता करने दौड़ता है! — ऐसे जीवों को श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—

अनन्त सुख नाम दुःख वहाँ रही न मित्रता,
अनन्त दुःख नाम सुख प्रेम वहाँ विचित्रता!
उघाड़ न्याय नेत्र को निहार रे निहार तू
निवृत्ति शीघ्रमेव धारि वह प्रवृत्ति बाल तू॥

अरे जीव! अनन्त सुख से भरपूर यह आत्मस्वभाव, इसकी आराधना में दुःख मानकर इसकी मित्रता तूने छोड़ दी परन्तु वास्तव में इसमें जरा भी दुःख नहीं है, अकेला अनन्त सुख भरा है-उसमें तू प्रीति क्यों नहीं करता? और बाह्य विषय-कि जिसकी प्रीति में अनन्त दुःख है, तथापि वहाँ सुख मानकर तू प्रेम करता है-यह आश्चर्य की बात है! जिसमें सुख भरा है—ऐसे अपने सन्मुख तो देखता नहीं और जिसमें स्वप्न में भी सुख नहीं, उसमें प्रेम करता है-यह अज्ञान है। ऐसे अज्ञान को, हे जीव! तू छोड़! और ज्ञाननेत्र को उघाड़कर देख... तुझमें ही सुख है, उसे देख... और बाह्य विषयों में सुखबुद्धि की विपरीत प्रवृत्ति को तू शीघ्र छोड़।

ज्ञानियों को चैतन्य के अतीन्द्रियसुख के समक्ष जगत् के कोई विषय रुचिकर नहीं लगते। शुभ या अशुभ कोई भी इन्द्रियविषयों

www.vitragvani.com

में या उस ओर के राग में धर्मी जीवों को कभी सुख भासित नहीं होता। अरे! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वामी यह चैतन्यभगवान, उन इन्द्रिय-विषयों में अटक जाये-यह तो निन्द्य है। इन्द्रियों को हत् कहा, वहाँ इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, परन्तु उस ओर का झुकाव वह हत् है-निन्द्य है और दु:खरूप है। दु:खी जीव ही बाह्य विषयों की ओर आकुलता से दौड़ते हैं। यदि दु:खी न हों तो विषयों की ओर क्यों दौड़े? अतीन्द्रिय चैतन्य सुख के स्वाद में लीन सन्तों को इन्द्रिय-विषयों सन्मुख झुकाव नहीं होता।

अहा! आत्मा के अतीन्द्रियसुख स्वभाव की अलौकिक बात प्रसन्नता से जिसके अन्तर में बैठी है, आचार्यदेव कहते हैं कि वह जीव अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करेगा क्योंकि उसकी रुचि का झुकाव इन्द्रियों की ओर से तथा इन्द्रियज्ञान की ओर से पराङ्मुख होकर अतीन्द्रियज्ञान-आनन्दस्वभाव की ओर उल्लसित हुआ है। चैतन्यस्वभाव के समीप और इन्द्रियों से दूर होकर वह आत्मा, अतीन्द्रियसुख का अनुभव करेगा।

चैतन्य जीवन की ज्योत इन्द्रियों में नहीं; इन्द्रियों के संग में चैतन्य जीवन की ज्योत हीन पड़ जाती है। भाई! तू अतीन्द्रिय वीतरागी चैतन्य ज्योत है, तुझे इन्द्रियों के साथ भाई-बन्धी कैसी? अतीन्द्रियस्वभाव के सन्मुख हुई जलहलती ज्ञान ज्योत, वही अतीन्द्रियसुख का कारण है; भगवन्त अपने आत्मा में ऐसे पूर्ण सुख को अनुभव कर रहे हैं।

मुक्त जीव सिद्ध भगवन्त, इन्द्रिय या शरीर बिना ही परम सुखरूप स्वयमेव परिणमित होते हैं; शरीररहित अतीन्द्रियसुख, वह भगवन्तों को प्रसिद्ध है। जैसे वहाँ शरीर के बिना ही सुख है,

www.vitragvani.com

इसलिए शरीर सुख का साधन नहीं है; उसी प्रकार निचलीदशा में सशरीर जीवों को भी शरीर, सुख का साधन नहीं है। अज्ञानी मिथ्या कल्पना से भले माने कि शरीर और इन्द्रिय-विषयों में सुख है परन्तु वह कल्पना भी शरीर के कारण या विषयों के कारण नहीं हुई है। वे शरीरादिक तो अचेतन हैं, वे जीव की परिणति में अकिंचित्कर हैं।

अज्ञानी का जो कल्पित इन्द्रियसुख (सच्चा सुख नहीं परन्तु सुख की मात्र कल्पना), उसमें भी शरीर कुछ साधन नहीं होता; सुख की कल्पनारूप शरीर परिणमित नहीं होता अथवा शरीर ऐसा नहीं कहता कि तू मुझमें सुख की कल्पना कर। अज्ञानी अपने मोह के वश ही पर में सुख की मिथ्या कल्पना करता है। इस प्रकार संसार अवस्था में कल्पित सुख में भी शरीर आदि विषय, साधन नहीं होते, तो फिर सिद्ध भगवन्तों का जो परम अतीन्द्रिय सहज आत्मिक सुख, उसमें शरीरादि विषय क्या करेंगे? वे तो अकिंचित्कर हैं। इस प्रकार इन्द्रिय-विषयों से रहित आत्मा का सुख प्रसिद्ध करके समझाया। अहो! ऐसे सुख को कौन नहीं स्वीकार करेगा? आत्मा के ऐसे सुखस्वभाव को जानकर बाह्य विषयों में सुखबुद्धि कौन नहीं छोड़ेगा?

आचार्यदेव कहते हैं कि भव्य जीव, आत्मा के सुख की यह बात सुनते ही उल्लास से उसका स्वीकार करता है और बाह्य विषयों में सुख की बुद्धि तुरन्त ही छोड़ता है। ऐसा जीव अल्प काल में मोक्षसुख को प्राप्त करता है, वर्तमान में भी उसका अद्भुत नमूना चख लेता है।

देखो, यह मोक्षसुख की मजा की बात!! ●

www.vitragvani.com

शुद्धोपयोग का फल-अतीन्द्रिय महान सुख

[वही प्रशंसनीय है; राग का फल प्रशंसनीय नहीं]

आचार्य भगवान ने प्रवचनसार में पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके मोक्ष का स्वयंवर-मंडप रचा है.... अहा! हम पंच परमेष्ठी में मिलकर मोक्षलक्ष्मी को साधने निकले हैं, उसका यह मङ्गल-उत्सव है।

मोक्ष का साधन क्या? कि शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र ही मोक्ष का साधन है; और बीच में भूमिकानुसार आया हुआ शुभराग तो बन्ध का कारण है, इसलिए वह हेय है।—इस प्रकार शुभराग को छोड़कर, शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग को आचार्यदेव ने अंगीकार किया है... स्वयं शुद्धोपयोगी चारित्रदशारूप परिणमन किया है।

इस प्रकार शुभ-अशुभपरिणति को छोड़कर और शुद्धोपयोग परिणति को आत्मसात करके आचार्यदेव, शुद्धोपयोग अधिकार प्रारम्भ करते हैं; स्वयं तद्रूप परिणमन करके उसका कथन करते हैं। उसमें प्रथम, शुद्धोपयोग के प्रोत्साहन के लिए उसके फल की प्रशंसा करते हैं। अहो, शुद्धोपयोग जिनको प्रसिद्ध है—ऐसे केवली भगवन्तों को आत्मा में से उत्पन्न अतीन्द्रिय परम सुख है। सर्व सुखों में उत्कृष्ट सुख केवलियों को है; वह सुख रागरहित है, इन्द्रियविषयों से रहित है, अनुपम है और अविनाशी एवं अविच्छिन्न है। संसार के किन्हीं विषयों में ऐसा सुख नहीं।

अहो! ऐसा अपूर्व आत्मिकसुख परम अद्भुत आह्लादरूप है, जीवों ने पूर्वकाल में कभी उसका अनुभव नहीं किया है। सम्यग्दर्शन में ऐसे अपूर्व सुख के स्वाद का अंश आ जाता है,

www.vitragvani.com

परन्तु यहाँ शुद्धोपयोग के फलरूप पूर्ण सुख की बात है।

शुद्धोपयोग से आत्मा स्वयं अपने में लीन होने पर, अतीन्द्रिय-सुख उत्पन्न हुआ; उसमें अन्य किसी साधन का आश्रय नहीं, अकेले आत्मा के ही आश्रय से वह सुख प्रगट हुआ है। उसे एक आत्मा का ही आश्रय है और अन्य के आश्रय से निरपेक्ष है, अन्य किसी का आश्रय उसे नहीं, इस प्रकार अस्ति-नास्ति से कहा। आत्मा से ही उत्पन्न और विषयों से रहित-ऐसा सुख ही सच्चा सुख है, और उस सुख का साधन, शुद्धोपयोग है; इसलिए वह शुद्धोपयोग उपादेय है। ऐसे शुद्धोपयोग के फलरूप परम सुख का स्वरूप बतलाकर उस ओर आत्मा को प्रोत्साहित किया है। हे जीव! अतीन्द्रियसुख के कारणरूप ऐसे शुद्धोपयोग में उत्साहसहित आत्मा को लगा।

संसार के जितने इन्द्रिय-सुख हैं, उन सबसे शुद्धोपयोग का सुख बिल्कुल भिन्न जाति का है, इसलिए वह अनुपम है, उसे अन्य किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। अहो! शुद्धोपयोगी जीव का परम अनुपम सुख, वह अज्ञानियों के लक्ष्य में भी नहीं आता। आगे कहेंगे कि सिद्धभगवन्तों के और केवली भगवन्तों के उत्कृष्ट अतीन्द्रियसुख का स्वरूप सुनते ही जो जीव, उत्साह से उसका स्वीकार करते हैं, वे आसन्न भव्य हैं। इस अतीन्द्रियसुख के वर्णन को 'आनन्द अधिकार' कहा है। हे जीवों! विषयों में सुखबुद्धि छोड़कर, आत्मा के आश्रय से ऐसा परम आनन्दरूप परिणमन करो।

यह सुख शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट होता है। शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट

www.vitragvani.com

किया हुआ सुख, सादि-अनन्त काल में कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, वह अनन्त काल रहनेवाला है। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख'—ऐसा सुख, शुद्धोपयोग से ही प्राप्त होता है। अतीन्द्रियसुख में शुभराग का तो कहीं पर नामनिशान नहीं; राग से और राग के फलरूप सामग्री से पार ऐसा वह सुख है। वह सुख प्रगट होने के बाद उसमें कभी भंग नहीं पड़ता, अविच्छिन्नरूप से निरन्तर वह सुख वर्तता है। शुद्धोपयोगी जीवों को ऐसा उत्कृष्ट अतीन्द्रियसुख है, वह सर्वथा इष्ट है, आदरणीय है, प्रशंसनीय है।—शुद्धोपयोग का ऐसा फल बतलाकर आत्मा को उसमें प्रोत्साहित किया है।

जिस प्रकार सूर्य को उष्णता के लिए या प्रकाश के लिये अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, स्वयमेव वह उष्ण और प्रकाशरूप है; उसी प्रकार सुख और ज्ञान के लिए आत्मा को किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, वह स्वयमेव स्वभाव से ही सुखस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है। अहो! ऐसे आत्मा को श्रद्धा में तो लो। सिद्धों के सुख को पहिचानने पर ऐसा आत्मस्वभाव पहिचानने में आता है। इन्द्रियों से ज्ञान होता है, राग से सुख होता है—ऐसा माननेवाले, सिद्धों और केवलियों को मानते ही नहीं; वीतराग परमेश्वर को वे नहीं जानते, उन्हें तो राग ही मान्य है। रागरहित ज्ञान और सुख प्रतीति में ले तो राग से पृथक् आत्मस्वभाव अनुभव में आ जाये। आचार्य भगवान को स्वयं वैसे अतीन्द्रियसुख का और अतीन्द्रिय ज्ञान का अंश प्रगट हुआ, तब सर्वज्ञ के सुख की और ज्ञान की सच्ची प्रतीति हुई। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि ही स्वसंवेदनपूर्वक सर्वज्ञ के परमानन्द की प्रतीति करता है और स्वयं भी वैसे परम अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द को साधता है। ●

www.vitragvani.com

मोक्ष को साधने के लिये

मुमुक्षु को शीघ्रता से करने योग्य कार्य

मोक्ष को साधने के लिये मुमुक्षु को शीघ्र करने योग्य कार्य क्या है, वह यहाँ समझाते हैं। भगवान आत्मा, देह से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु है; वह अपने को भूलकर अपने अतिरिक्त किसी भी दूसरे पदार्थ के आश्रय से सुख होना माने तो उसमें मिथ्यात्व का सेवन होता है। आचार्यदेव समझाते हैं कि हे भाई! तेरा स्वभाव तुझसे परिपूर्ण है, तेरे ही आश्रय से तेरी मुक्ति होती है; किसी दूसरे का आश्रय करने से तो अशुभ या शुभराग से बन्धन और दुःख ही होता है। मुक्ति का मार्ग, पर के आश्रय से नहीं; मुक्ति, स्वद्रव्य के आश्रित है... इसलिए स्वद्रव्य का आश्रय करना मुमुक्षु का कार्य है।

ते जीव है! तो तेरा जीवपना कैसा है? तेरा जीवन कैसा है? उसकी यह बात है। तू स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दरस का पूर है। शरीर तो जड़ है, और अन्दर के पुण्य-पाप के रागभाव भी अशुचि हैं, उनमें चैतन्य का आनन्द नहीं। वे पराश्रित भाव, मुक्ति का कारण नहीं हो सकते; मुक्ति का मार्ग, चैतन्यमय स्वद्रव्य के आश्रित है। शुद्ध आत्मा को जो नहीं पहिचानते, उसके सन्मुख होकर सच्चा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट नहीं करते और पराश्रित शुभभावरूप व्यवहारश्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को मोक्ष का कारण समझकर सेवन करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं।

भाई! तू स्वद्रव्य को जानकर उसका आश्रय कर, तो ही मोक्षमार्ग प्रगट होगा। स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता को

www.vitragvani.com

पहिचानकर स्वद्रव्य के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है; इसलिए हे मुमुक्षु! तू शीघ्र स्वद्रव्य को जान।

देखो! ऐसी बात श्रीमद् राजचन्द्रजी ने छोटी उम्र में (१७ वर्ष की उम्र से पहले) भी लिखी है। सात वर्ष की उम्र में तो उन्हें जातिस्मरण में पूर्वभव का ज्ञान हुआ था। अपने यहाँ राजुलबेन को भी ढाई वर्ष की उम्र में पूर्वभव में जूनागढ़ में गीता थी, उसका जातिस्मरणज्ञान हुआ है। इससे भी विशेष नवभव का ज्ञान, सोनगढ़ में चम्पाबेन को है : उनकी बात गहरी है। आत्मा की अपार ताकत है। उसे पहचानकर उसमें रमणता करने से अपूर्व आनन्द अनुभव में आता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने सत्रह वर्ष की आयु से पूर्व जो १२५ बोध वचन लिखे हैं, उनमें स्वद्रव्य का आश्रय करने और परद्रव्य का आश्रय छोड़ने के दस बोल बहुत सरस है।

निश्चय का आश्रय करो और व्यवहार का आश्रय छोड़ो-ऐसा जो समयसार का आशय है, वह आशय श्रीमद् राजचन्द्रजी ने निम्न दस बोलों में बतलाया है। उसमें प्रथम तो कहते हैं कि —

स्वद्रव्य और अन्य द्रव्य को भिन्न-भिन्न देखो।

—इस प्रकार दोनों को भिन्न जानकर क्या करना? इसके लिये दस बोल में सरस स्पष्टीकरण लिखा है :—

- ✯ स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्र हों।
- ✯ स्वद्रव्य के व्यापक शीघ्र हों।
- ✯ स्वद्रव्य के धारक शीघ्र हों।
- ✯ स्वद्रव्य के रमक शीघ्र हों।

www.vitragvani.com

✯ स्वद्रव्य के ग्राहक शीघ्र हों।

✯ स्वद्रव्य की रक्षकता पर ध्यान रखें (दें)।

अर्थात् निश्चय का आश्रय करो... शीघ्र करो... फिर करूँगा- ऐसा विलम्ब मत करो परन्तु शीघ्रता से स्वद्रव्य को पहचानकर उसका आश्रय करो, उसकी रक्षा करो और उसमें व्यापक बनो परन्तु राग के रक्षक मत बनो, राग में व्यापक मत बनो। पहले कुछ दूसरा कर लें और फिर आत्मा की पहिचान करेंगे - ऐसा कहनेवाले को आत्मा की रुचि नहीं है। आत्मा की रक्षा करना उसे नहीं आता। श्रीमद् राजचन्द्रजी छोटी उम्र में भी कितना सरस कहते हैं! देखों तो सही! वे कहते हैं कि हे जीवों! तुम शीघ्रता से स्वद्रव्य के रक्षक बनो... तीव्र जिज्ञासा द्वारा स्वद्रव्य को जानकर उसके रक्षक बनो, उसमें व्यापक बनो, उसके धारक बनो-ज्ञान में उसकी धारणा करो; उसमें रमण करनेवाले बनो, उसके ग्राहक बनो; इस प्रकार सर्व प्रकार से स्वद्रव्य पर लक्ष्य रखकर उसकी श्रद्धा करो। इस प्रकार निश्चय का ग्रहण करने को कहा। अब दूसरे चार वाक्यों में व्यवहार का और पर का आश्रय छोड़ने को कहते हैं:—

✯ परद्रव्य की धारकता शीघ्र छोड़ें।

✯ परद्रव्य की रमणता शीघ्र छोड़ें।

✯ परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्र छोड़ें।

✯ परभाव से विरक्त हों।

विकल्प-शुभराग से आत्मा को कुछ लाभ होगा - ऐसी मान्यता छोड़ो। परद्रव्याश्रित जितने भाव हैं, वे भाव, आत्मा में धारण करनेयोग्य नहीं हैं। उनकी धारकता शीघ्रता से छोड़ने योग्य

www.vitragvani.com

है। लोग कहते हैं कि व्यवहार छोड़ने को अभी मत कहो। यहाँ तो कहते हैं कि उसे शीघ्र तजो। जितने परद्रव्याश्रित भाव हैं, वे सब शीघ्र छोड़नेयोग्य हैं-ऐसा लक्ष्य में तो अभी लो।

हे जीव! अन्तर में आनन्द का सागर तेरा आत्मा कैसा है, उसे खोज। स्वद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य में रमना, तुझे शोभा नहीं देता, उसमें तेरा हित नहीं है। अन्तर्मुख होकर स्वद्रव्य में रमण कर... उसमें तेरा हित और शोभा है। वही मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष को साधने के लिये, हे मुमुक्षु! तू शीघ्र ऐसा कर। ●

भगवान और भक्त

सर्वज्ञ भगवन्तों का ज्ञान और सुख, अतीन्द्रिय है-ऐसा पहचाननेवाले को अपने में ही अतीन्द्रियज्ञान और सुख हुआ है और उसके बल से ही उसने सर्वज्ञ के अतीन्द्रियज्ञान-सुख का निर्णय किया है।

अकेले इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख में ही खड़े रहकर अतीन्द्रिय ज्ञान-सुख का निर्णय नहीं हो सकता।

भगवान और भक्त एक जाति के हुए, तब ही भगवान की पहिचान हुई... भगवान की वास्तविक पहिचान होने पर, जैसे ज्ञान-आनन्द भगवान के पास है, उसका नमूना स्वयं को प्राप्त हुआ... भगवान और भक्त के बीच ऐसी सन्धि है।

- मेरा प्रभु मुझे प्रभुजी जैसा बनावे।

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन होने का वर्णन

निकटवर्ती शिष्य तुरन्त ही समझ जाता है और तुरन्त ही उसे आनन्दमय सुन्दर बोध तरंगें उल्लसित होती हैं।

ज्ञायकभाव का अनुभव कराने के लिये समयसार की छठवीं गाथा में पर्यायभेदों का निषेध किया, अर्थात् पर्यायभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार छुड़ाया और सातवीं गाथा में गुणभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार छुड़ाया है; इस प्रकार व्यवहार से पार एकरूप ज्ञायकभाव का निर्विकल्प अनुभव होने पर, शुद्ध आत्मा ज्ञात होता है। इस प्रकार भेदरहित आत्मा का अनुभव करके उसे शुद्ध आत्मा कहा है। विकल्प का और भेद का अनुभव, वह अशुद्धता है; शुद्ध आत्मा के अनुभव में उसका अभाव है।

ऐसे आत्मा का अनुभव होने पर चौथा गुणस्थान हुआ, अर्थात् अपने में अपने परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। उस परमात्मा में विभाव है ही नहीं; इसलिए उसकी चिन्ता परमात्मा में नहीं। ऐसे आत्मा को अनुभव करनेवाले धर्मी कहते हैं कि अहा! हमारा ऐसा परमात्मतत्त्व! उसमें विभाव है ही कहाँ-कि उसे मिटाने की चिन्ता करें? हम तो विभाव से पार ऐसे हमारे इस परमतत्त्व का ही अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति ही मुक्ति को स्पर्श करती है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।

जो शुद्ध परमतत्त्व है, उसके अनुभव में तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द सब समाहित हो जाता है, परन्तु मैं ज्ञान हूँ-मैं दर्शन

www.vitragvani.com

हूँ-मैं चारित्र हूँ—ऐसे विकल्पों का परम तत्त्व में प्रवेश नहीं है। इसलिए आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद से कहना, वह भी व्यवहार है। ऐसे व्यवहार के आश्रय से विकल्प होता है, शुद्धतत्त्व अनुभव में नहीं आता। अभेद के आश्रय से शुद्धतत्त्व का निर्विकल्प अनुभव होता है।

जिसने अभी स्वभाव का अनुभव नहीं किया परन्तु अनुभव करने के लिये जो एकदम तैयार हुआ है-ऐसे 'निकटवर्ती शिष्य को' अभेद समझाते हुए बीच में भेद आ जाता है।

शिष्य कैसा है ? - निकटवर्ती है। उसमें दो प्रकार—

☆ एक तो स्वभाव के समीप आया हुआ है और अब निकट में ही स्वभाव का अनुभव करनेवाला है, इसलिए निकटवर्ती है।

☆ दूसरा, समझने की धगशपूर्वक ज्ञानी गुरु के निकट आया है, इसलिए निकटवर्ती है।

— इस प्रकार भाव से और द्रव्य से दोनों प्रकार से निकटवर्ती है।

स्वभाव की बात सुनने पर भड़ककर दूर नहीं भागता परन्तु स्वभाव की बात सुनने को प्रेम से समीप आता है और सुनकर उसकी रुचि करके स्वभाव में निकट आता है। ऐसा निकटवर्ती शिष्य, व्यवहार के भेद कथन में न अटककर, उसका परमार्थ समझकर, आत्मा के स्वभाव का अनुभव कर लेता है। कैसा अनुभव करता है ? अनन्त धर्मों को जो पी गया है और जिसमें अनन्त धर्मों का स्वाद परस्पर किंचित् मिल गया है - ऐसे एक अभेदस्वभावरूप धर्मी अपने को अनुभव करता है; दर्शन-ज्ञान -चारित्र के भेद को वह अनुभव नहीं करता। ऐसा अनुभव करने

www.vitragvani.com

के लिये तत्पर हुए निकटवर्ती शिष्यजन के लिये यह शुद्धात्मा का उपदेश है। अपने स्वानुभव से ही ऐसा आत्मा प्राप्त होता है, दूसरे किसी प्रकार से प्राप्त नहीं होता।

धर्मी और धर्म के बीच स्वभावभेद नहीं, तथापि भेद का विकल्प करे तो एक धर्मी / आत्मा अनुभव में नहीं आता; इसलिए भेदरूप व्यवहार को उल्लंघकर, अनन्त धर्मस्वरूप एक आत्मा को सीधे लक्ष्य में लेने पर, निर्विकल्परूप से शुद्ध आत्मा अनुभव में आता है, उसमें अनन्त गुण के स्वादरूप 'आत्मरस' वेदन में आता है।

अपनी चैतन्यवस्तु का अनुभव करने पर, गुण-गुणीभेद का विकल्प भी नहीं रहता; निर्विकल्प आनन्द का अनुभव रहता है। मात्र आनन्द नहीं परन्तु अनन्त गुण का रस अनुभव में एक साथ वर्तता है। सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी दशा होती है।

सम्यग्दर्शन के काल में शुद्धोपयोग होता है परन्तु 'यह शुद्धोपयोग और मैं आत्मा'—ऐसा भेद भी वहाँ नहीं है; अभेद एक वस्तु का ही अनुभव है। 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसा भी विकल्प अनुभूति में नहीं है। 'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसे विकल्प से क्या ? उस विकल्प में कहीं आत्मा नहीं; विकल्प से पार होकर जब ज्ञान, स्वसन्मुख एकाग्र हुआ, तब आत्मा साक्षात् अनुभव में आया; तब ज्ञान, इन्द्रियों से और आकुलता से पार होकर आत्मा में झुका। आत्मा अपने यथार्थस्वरूप से अपने में प्रसिद्ध हुआ - ऐसी सम्यग्दर्शन की विधि है।

अनादि का तो मिथ्यात्व है, परन्तु जहाँ ज्ञान जागृत हुआ और

www.vitragvani.com

ज्ञानस्वभावरूप अपना निर्णय करके, राग से भिन्न पड़कर स्वसन्मुख हुआ, वहाँ एक क्षण में सम्यग्दर्शन होता है। एक क्षण में मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन करने की आत्मा में अचिन्त्य सामर्थ्य है।

सम्यग्दर्शन के लिये शुद्ध आत्मा का स्वरूप आचार्यदेव समझाते हैं, तब जिज्ञासु शिष्य आँखें फाड़कर अर्थात् समझने की धगश से ज्ञान को एकाग्र करके लक्ष्य में लेता है; उसे शुद्धात्मा को लक्ष्य में लेने की इन्तजारी है। सुनते-सुनते ऊँघता नहीं, अथवा सन्देह या उकताहट नहीं करता परन्तु टकटकी लगाकर समझने की ओर ज्ञान को एकाग्र करता है।

शुद्धात्मा का स्वरूप सुनते हुए तत्क्षण ही उसमें उपयोग लगाकर एकाग्र करता है, प्रमाद नहीं करता। 'बाद में विचार करूँगा, घर जाकर फिर करूँगा, फुर्सत से करूँगा' इस प्रकार वेदरकारी नहीं करता परन्तु तत्क्षण ही वैसे शुद्ध आत्मा में उपयोग का एकाग्र करता है और आनन्दपूर्वक आत्मा का अनुभव करता है—ऐसी उत्तम पात्रतावाला शीघ्र तुरन्त ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर जाता है।

जिस प्रकार ऋषभदेव के जीव को जुगलिया के भव में मुनियों ने सम्यग्दर्शन का उत्तम उपदेश प्रदान करके कहा कि हे आर्य! तू अभी ही ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण कर (तत्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते।)—मुनियों का वह उपदेश सुनते ही उसी क्षण अन्तर्मुख होकर उस जीव ने सम्यग्दर्शन प्रगट किया। इस प्रकार उत्तम पात्रतावाले जीव की बात ली है कि जिसे उपदेश सुनते ही तुरन्त अन्तर में परिणमित हो जाता है।

www.vitragvani.com

श्रीगुरु ने ज्ञायक आत्मा बतलाया और शिष्य को समझाने के लिये इतना भेद पाड़कर कहा कि 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा है' इतना सुनते ही वह शिष्य, दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद के विकल्प में खड़ा नहीं रहा परन्तु ज्ञान को अभेद में एकाग्र करके सीधे आत्मा को पकड़ लिया कि अहो! गुरु ने ऐसा आत्मा मुझे बताया!! इस प्रकार श्रीगुरु ने निकटवर्ती शिष्य को अभेद आत्मा समझाने के लिये भेद पाड़कर समझाया और पात्र शिष्य भी तत्काल भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा को समझ गया, देर नहीं लगायी; दूसरे किसी लक्ष्य में नहीं अटका परन्तु तुरन्त ही ज्ञान को अन्तर में एकाग्र करके आत्मा को समझ गया। समझने पर उसे आत्मा में क्या हुआ? कि तत्काल अत्यन्त आनन्दसहित सुन्दर बोधतरंग उछलने लगी। अहा...! ज्ञान के साथ परम आनन्द की तरंग उछली, मानो पूरा आनन्द का समुद्र उछला। अपने में ही आनन्द का समुद्र देखा। निर्विकल्प अनुभूति करके भगवानस्वरूप से स्वयं ही अपने में प्रगट हुआ।

जिस प्रकार इस शिष्य ने तत्काल निर्विकल्प आनन्दसहित आत्मा का अनुभव किया, वैसे प्रत्येक जीव में ऐसा अनुभव करने की सामर्थ्य है। अन्दर ज्ञान को एकाग्र करना चाहिए। वाणी या विकल्प में कहीं भी नहीं अटकते हुए, शुद्धात्मा पर नजर लगाकर ज्ञान को उसमें एकाग्र किया, वहाँ अतीन्द्रियज्ञान तरंग प्रगट हुई और साथ में परम आनन्द का अनुभव हुआ – सम्यग्दर्शन होने का यह वर्णन है।

श्रोता / शिष्य ऐसा पात्र था कि भेद की दृष्टि छोड़कर सीधा

www.vitragvani.com

अभेद में घुस गया... भेद का-व्यवहार का-शुभ का अवलम्बन छोड़ने में उसे संकोच नहीं हुआ; शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेते ही महान आनन्दसहित ऐसा निर्मल ज्ञान खिला कि समस्त भेद का - व्यवहार का - राग का अवलम्बन छूट गया। ज्ञान और राग की अत्यन्त भिन्नता अनुभव में आ गयी। ज्ञान के साथ आनन्द होता है; जिसमें आनन्द का वेदन नहीं, वह ज्ञान, सच्चा ज्ञान ही नहीं। आनन्दरहित के अकेले ज्ञान को वास्तविक ज्ञान नहीं कहते। अकेला परलक्ष्यी ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं है।

शिष्य सीधे अभेद को पहुँच नहीं सका था, तब तक बीच में भेद था; श्रीगुरु ने भी भेद से समझाया था परन्तु वह भेद, भेद का अवलम्बन करने के लिये नहीं था। वक्ता को या श्रोता को किसी को भेद के अवलम्बन की बुद्धि नहीं थी; उनका अभिप्राय तो अभेदवस्तु बताने का ही था और उसी का अनुभव कराने का था। उस अभिप्राय के बल से ज्ञान को अन्तर के अभेदस्वभाव में एकाग्र करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलम्बन ही छोड़ दिया... और तुरन्त ही महान अतीन्द्रिय आनन्दसहित सम्यग्ज्ञान की सुन्दर तरंगें खिल उठीं... सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, परम आनन्द हुआ। ऐसी निर्विकल्प अनुभूतिसहित शिष्य अपने आत्मा का शुद्धस्वरूप समझ गया।

— ऐसे भाव से समयसार सुने, उसे भी निर्विकल्प आनन्द के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन होता ही है। यहाँ तो कहते हैं कि देर नहीं लगती, परन्तु तुरन्त ही होता है। अपने आत्मा की प्राप्ति के लिये जिसे सच्ची तैयारी होती है, उसे तुरन्त ही उसकी प्राप्ति होती

www.vitragvani.com

ही है। अरे! आकाश में से उतरकर सन्त उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझाते हैं-जैसे महावीर के जीव को सिंह के भव में, और ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के भव में सम्यक्त्व की तैयारी होने पर, ऊपर से गगनविहारी मुनियों ने वहाँ उतरकर उन्हें आत्मा का स्वरूप समझाया और वे जीव भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। किस प्रकार प्राप्त हुए? यह बात इस गाथा में समझायी है। भेद का लक्ष्य छोड़कर, अनन्त धर्म से अभेद आत्मा में ज्ञान को एकाग्र करने पर, निर्विकल्प आनन्द के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए, सुन्दर बोधतरंगें उल्लसित हुई। इस प्रकार तत्काल सम्यग्दर्शन होने की विधि समझाकर सन्तों ने परम अचिन्त्य उपकार किया है। ●

शान्ति का वेदन

चिदानन्दी परमतत्त्व के अनुभव से पहले शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि के विचार में साथ में विकल्प आता है, उस विकल्प का खेद है; उसका उत्साह नहीं, उसके प्रति उत्सुकता नहीं; शुद्धस्वभाव की ओर ही उत्साह और उत्सुकता है। सीधे-सीधे परमस्वभाव में ही पहुँच जाने की भावना है, उसी के अनुभव का लक्ष्य है, परन्तु बीच में भेद-विकल्प आ जाते हैं, उनकी भावना नहीं; उस विकल्प के समय भी ज्ञान तो उनसे पृथक् होकर चैतन्य की शान्ति की ओर ही झुक रहा है। विकल्प तो अशान्ति है; जो शान्ति का वेदन आता है, वह तो स्वभाव सन्मुख जा रहे ज्ञान में से आता है, विकल्प में से नहीं।

www.vitragvani.com

तीर्थंकरों के मार्ग में प्रवेश करने का द्वार

आत्मा का परम स्वभाव सत् है; उस सत् को लक्ष्य में लेकर, उसका पक्ष करके, उसके अभ्यास में दक्ष होकर उसे स्वानुभव से प्रत्यक्ष करो... तो अपूर्व आनन्दसहित मोक्ष का मार्ग आत्मा में खुल जायेगा।

आत्मा को सम्यग्दर्शन कैसे हो, अर्थात् तीर्थङ्करों के मार्ग में प्रवेश कैसे हो—उसकी यह बात चलती है।

व्यवहार के अनेक प्रकार हैं क्योंकि उसमें सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत है और कर्म के साथ मिलावटवाले अनेक भाव अनुभव में आते हैं। जबकि निश्चय का प्रकार एक ही है, उसमें सहज एक ज्ञायकभावरूप से ही आत्मा अनुभव में आता है; और ऐसे सहज एक ज्ञायकभाव को शुद्धनय द्वारा जो देखते हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं, वे ही सच्चे आत्मा को देखनेवाले हैं। ऐसे आत्मा को देखकर, तीर्थङ्कर भगवन्तों के मार्ग में प्रवेश किया जाता है। रागादि अशुद्धभावरूप से ही अपने को जो अनुभव करता है, उसे तीर्थङ्करों के मार्ग में प्रवेश नहीं होता, अर्थात् धर्म की शुरुआत नहीं होती। भगवन्त तीर्थङ्करों द्वारा बताये हुए मोक्षमार्ग में प्रवेश करने का द्वार शुद्धनय है।

दुनिया में बहुत से जीव तो रागादि अशुद्धभावरूप ही आत्मा को अनुभव करते हैं; शुद्धनय द्वारा भेदज्ञान करके शुद्ध आत्मा का अनुभव करनेवाले जीव तो थोड़े / विरले ही हैं। यहाँ पानी और कीचड़ के दृष्टान्त से यह बात समझाते हैं।

आत्मा का सहज एक ज्ञायकभाव और मोहादि अशुद्धभाव

www.vitragvani.com

सर्वथा एकमेक नहीं परन्तु भिन्न स्वभाववाले हैं। जैसे पानी और कीचड़ सर्वथा एक नहीं, इस कारण निर्मली औषधि द्वारा उन्हें भिन्न किया जा सकता है; उसी प्रकार शुद्धनयरूपी परम निर्मल औषध द्वारा आत्मा को और मोहादि अशुद्धभावों को भिन्न करके शुद्ध आत्मा का अनुभव हो सकता है।

आत्मा का सहज एक ज्ञायकभाव तो सदा ही विद्यमान है परन्तु एकान्त राग को ही अनुभव करनेवाले अज्ञानी की दृष्टि में वह ज्ञायकभाव दिखायी नहीं देता; इसलिए अज्ञानी के लिये वह ढँक गया है-ऐसा कहा है। उसका कहीं अभाव नहीं हो गया है परन्तु अज्ञानी की दृष्टि में वह दिखायी नहीं देता; उसे तो अशुद्धता ही दिखती है। सहज एक ज्ञायकभाव को देखने के लिये तो शुद्धनय की दृष्टि चाहिए। शुद्धनय में ही ऐसी ताकत है कि सर्व अशुद्धभावों से भिन्न एक सहज ज्ञायकभावरूप से आत्मा को अनुभव में लेता है। शुद्धनय स्वयं भूतार्थ आत्मस्वभाव में अभेद होकर उसे अनुभवता है; इसलिए उसे भूतार्थ कहा है। ऐसा अनुभव ही सम्यग्दर्शन है, उसमें आत्मा का आनन्द झरता है। उसकी दृष्टि में भगवान आत्मा जैसा है, वैसा शुद्धरूप से प्रगट हुआ; पहले तिरोभूत था, वह अब शुद्धनय द्वारा प्रगट हुआ। इसमें भूतार्थ आत्मा का ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनों एक साथ है।

जो कर्म के साथ सम्बन्धरहित शुद्धज्ञानरस से भरपूर आत्मा को नहीं अनुभव करता, वह अपने को कर्म की ओर के अशुद्धभावरूप ही अनुभव करता है, अर्थात् वह कर्म को ही अनुभव करता है। व्यवहारनय ऐसे अशुद्ध आत्मा को देखता है, इसलिए वह अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। आत्मा के सत्य-भूतार्थस्वभाव को

www.vitragvani.com

व्यवहारनय नहीं देखता; आत्मा को देखने के लिये तो अतीन्द्रिय -दृष्टिरूप शुद्धनय चाहिए।

आत्मा का जीवन तो सम्यग्दर्शन में है; राग में या देह में कहीं आत्मा का जीवन नहीं है। भाई! तेरा जीवन जीना तुझे नहीं आया। तेरा वास्तविक स्वरूप बतलाकर सच्चा जीवन जीने की विधि तुझे सन्त बतलाते हैं। पहले तो चेतन से अन्य जो परभाव, उन सबको शुद्धनय द्वारा तुझसे भिन्न कर और सर्व परभाव से रहित एक भूतार्थ शुद्धात्मा को देख। शुद्धात्मा पर दृष्टि रखकर, जो निर्मल ज्ञान-आनन्दधाम में पवित्र जीवन है, वह आत्मा का जीवन है। उस जीवन में अनन्त गुणों की शुद्धता प्रगट अनुभव में आती है।

जहाँ तू है, वहाँ राग और शरीर नहीं; जहाँ शरीर और राग है, वहाँ तू नहीं। तू तेरे चैतन्यधाम में है; चेतन में राग नहीं और रागादि में चेतन नहीं। शरीर तो अचेतन है, उसमें जीव कैसा? और जीव में शरीर कैसा?

सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो और उसकी प्राप्ति होने पर, आत्मा में क्या होता है?-उसकी यह बात है। अहो! यह आत्मा के हित की मीठी-मधुर बात है। ऐसा परम वीतरागी सत्य अभी बाहर आया है और हजारों जीव जिज्ञासा से यह सुनते हैं। ऐसे सत्य का पक्ष करनेयोग्य है। आत्मा के स्वभाव की यह सत्य बात लक्ष्य में लेकर उसका पक्ष करनेयोग्य है और फिर बारम्बार उसके अभ्यास द्वारा उसमें दक्ष होकर, अनुभव द्वारा प्रत्यक्ष करनेयोग्य है। अत्यन्त सरल शैली से सबको समझ में आवे, वैसा यह सत्य है।

(ज्ञान प्रभावना की उत्तम वृत्तिपूर्वक गुरुदेवश्री कहते हैं कि)—
अभी तो लोगों को ऐसा सत्य मिले, इसके लिये सरल और

www.vitragvani.com

सस्ता साहित्य बहुत प्रचार करनेयोग्य है। अन्यत्र बड़ा खर्च करने की अपेक्षा ऐसे परम सत्य का प्रचार हो, वैसा साहित्य 'सरल और सस्ता' बहुत बाहर आवे, वह करनेयोग्य है। यद्यपि सोनगढ़ से बहुत साहित्य प्रकाशित हुआ है और लोग भी बहुत पढ़ते हैं। दस लाख पुस्तकें तो प्रकाशित हो गयी हैं। तथापि अभी बहुत साहित्य सबको समझ में आवे, वैसी सरल भाषा में और सस्ती कीमत में अधिक से अधिक प्रकाशित हो और सच्चे ज्ञान का प्रचार हो, वैसा करनेयोग्य है। अभी तत्त्व के जिज्ञासु बहुत लोग तैयार हुए हैं और आत्मा के स्वभाव की ऐसी उत्कृष्ट बात प्रेम से सुनते हैं। जिज्ञासु लोगों के भाग्य से ऐसा वीतरागी सत्य बाहर आया है।

मैं स्वयं ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ—ऐसा पहले अन्दर निर्णय करना चाहिए। ज्ञान है, वह राग को जानता है परन्तु स्वयं रागरूप नहीं होता। ज्ञान की ताकत में राग ज्ञात हो जाता है, परन्तु अन्तर में उपयोग को जोड़कर जो शुद्ध आत्मा को अनुभव करता है, उसे तो उस काल में शुद्धनय से शुद्ध परमभाव का ही अनुभव है। उस समय तो व्यवहार का लक्ष्य भी नहीं है। व्यवहार के काल में व्यवहार का ज्ञान होता है; इसलिए उस काल में उस व्यवहार का ज्ञान प्रयोजनवान है परन्तु शुद्ध आत्मा की अनुभूति के निर्विकल्प आनन्द के अवसर में तो व्यवहार का कोई प्रयोजन नहीं है; उसमें तो अभेद का ही साक्षात् अनुभव है। पर्याय में भले रागादि हों परन्तु शुद्धनय द्वारा देखने से राग एक ओर रह जाता है और शुद्ध आत्मा परमभावरूप से अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव, वह आत्मा का जीवन है, वह सम्यग्दर्शन है। जैसे स्वर्णकार सोना और लाख को शामिल गिनकर कीमत नहीं गिनता परन्तु लाख को भिन्न करके

www.vitragvani.com

अकेले स्वर्ण की कीमत गिनता है; उसी प्रकार शुद्धनयवाले ज्ञानी, आत्मा को और राग को मिलावट करके आत्मा की कीमत नहीं गिनते परन्तु राग को पृथक् करके अकेले ज्ञान-आनन्दरूप हुए शुद्ध आत्मा की कीमत गिनते हैं। वही शुद्धनय की दृष्टि से सच्चे आत्मा का अनुभव करते हैं, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वही मुमुक्षु जीव का जीवन है।

परभावों से भिन्न आत्मा के भूतार्थस्वभाव की अनुभूति, वह सम्यग्दर्शन है। कर्म के साथ मिलावटवाले अशुद्धभाव हैं, वे अभूतार्थ हैं और निर्मल गुण-पर्याय के भेद भी व्यवहारनय के विषय में हैं; शुद्ध आत्मा की अनुभूति में वे भेद नहीं हैं, इसलिए वे सब भेद अभूतार्थ हैं। वस्तु का स्वरूप समझने के लिये भेदरूप व्यवहार का उपदेश तो बहुत आता है परन्तु उसमें उस व्यवहार का आश्रय करने का प्रयोजन नहीं है। अभेदस्वभाव बतलाने के लिये व्यवहारी जीव की भाषा में व्यवहार से भेद करके कहने में आया है परन्तु कहनेवाले का आशय परमार्थस्वरूप बतलाने का है और श्रोता भी यदि ऐसा आशय समझकर परमार्थस्वरूप को लक्ष्य में ले तो उसने सच्चा श्रवण किया है।

परमार्थस्वरूप अभेद आत्मा को दृष्टि में लेकर उसका अनुभव करने से उसमें गुणभेद या पर्यायभेद दिखायी नहीं देते, उसमें राग या परद्रव्य का सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दृष्टिपूर्वक पर्याय का भी ज्ञान धर्मी करता है, वह व्यवहार है। अपनी शुद्धपर्याय को भेद पाड़कर जानना, वह भी व्यवहार है और उस भूमिका में जिनेन्द्रभगवान की भक्ति का भाव, गुरु के बहुमान का भाव, शास्त्र रचना इत्यादि का भाव, गृहस्थ को जिनपूजा, आहारदान इत्यादि का भाव—ऐसे भावों को उस-उस काल में धर्मी जानता है, वह व्यवहार है। ज्ञान

www.vitragvani.com

में ज्ञेयरूप से उस-उस प्रकार का व्यवहार ज्ञात होता है। व्यवहार में तन्मय हुए बिना साधक उसे जानता है। शुद्धद्रव्य के ज्ञान के साथ अपनी पर्याय का भी ज्ञान होता है और वह ज्ञान, साधक को उस-उस काल में प्रयोजनवान है। उस काल में अर्थात् जब विकल्प है, पर्याय पर लक्ष्य जाता है, तब वह पर्याय का ज्ञान करता है। जिसे शुद्ध आत्मा के अनुभव में लीनता ही है, उसे तो विकल्प ही नहीं है, पर्याय के भेद का लक्ष्य ही नहीं है; इसलिए उसे उस व्यवहार को जानने का प्रयोजन नहीं रहा, वह तो साक्षात् परमार्थ शुद्ध आत्मा को ही अनुभव करता है।

सम्यग्दृष्टि जीव की छोटी से छोटी दशा को ज्ञान की जघन्यदशा कहा जाता है, केवलज्ञान हो, वह ज्ञान का उत्कृष्टभाव है। इसके अतिरिक्त साधकदशा के जितने प्रकार हैं, वे सब मध्यमभाव हैं। अब व्यवहारनय तो परद्रव्य के सम्बन्ध से अशुद्धभाव को कहनेवाला है, अर्थात् पर्याय की अशुद्धता को वह दिखलाता है। परमार्थ में शुद्ध आत्मा का ही अनुभव है। साधक को ऐसे शुद्ध आत्मा का अनुभव हुआ है, इसलिए पर्याय में भी कितनी ही शुद्धता प्रगट हुई है और अभी पर्याय में कितनी ही अशुद्धता भी है। सविकल्पदशा में रागादिभाव होते हैं-ऐसे दोनों प्रकार साधक को एकसाथ वर्तते हैं। उनमें जब परमशुद्धस्वभाव के अनुभव में स्थिर नहीं और विकल्पदशा में है, तब पर्याय की शुद्धता-अशुद्धता इत्यादि प्रकारोंरूप व्यवहार को भी वह जानता है। व्यवहार में उत्सुकता न होने पर भी, व्यवहार के प्रकार उसके ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात हो जाते हैं- ऐसा स्व-पर प्रकाशक ज्ञान प्रयोजनवान है; राग का या व्यवहार का आश्रय करनेयोग्य है-ऐसा इसका अर्थ नहीं, परन्तु ज्ञान में ज्ञात

www.vitragvani.com

हुआ वह व्यवहार प्रयोजनवान है। 'उस काल में प्रयोजनवान्' ऐसा कहकर उसका ज्ञान कराया है परन्तु उसका आश्रय तो छोड़नेयोग्य है। व्यवहार के भावों से भिन्न पड़कर परमार्थ आत्मा की दृष्टि की, तभी व्यवहार का ज्ञान सच्चा हुआ। जो परमार्थ की दृष्टि न करे और व्यवहार के आश्रय की बुद्धि रखे, उसे तो व्यवहार का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता, उसे तो शास्त्रों में व्यवहारमूढ़ कहा है।

भाई! तेरे आत्मा में जो निश्चय और व्यवहार है, उसका यह रहस्य शास्त्रों में स्पष्ट किया है; उसे तू पहचान तो सही! निश्चय क्या और पर्याय में व्यवहार कैसा होता है?—उसे जानना चाहिए। व्यवहारनय भी जाननेयोग्य है परन्तु ग्रहण करनेयोग्य नहीं। सम्यक्त्वादि के लिये ग्रहण करनेयोग्य एक परमज्ञायकभाव ही है।

आत्मा का शुद्धस्वरूप एक प्रकार का है, उसे शुद्धनय देखता है; व्यवहार में पर्याय के अनेक प्रकार पड़ते हैं, उन्हें व्यवहारनय दिखाता है-ऐसे निश्चय-व्यवहारनय साधक को ही होते हैं; अज्ञानी को नहीं होते, केवली को नहीं होते। अज्ञानी को तो शुद्ध आत्मा की दृष्टि ही न होने से साधकभाव शुरु ही नहीं हुआ; और केवलज्ञानी को तो पूर्णता हो गयी है; बीच में जो साधक है, जिन्हें शुद्ध आत्मा की दृष्टि से साधकदशा शुरु हुई है, परन्तु अभी पूर्ण नहीं हुई, वे साधक जीव दोनों नयों के ज्ञानपूर्वक शुद्धस्वभाव के आश्रय से शुद्धता को साधते जाते हैं। इसका नाम धर्म और मोक्षमार्ग है। जिसने इस प्रकार निश्चय-व्यवहार जानकर शुद्ध आत्मा की दृष्टि की, उसने अपने आत्मा में मोक्ष के लिये मङ्गल शिलान्यास किया। अब अल्प काल में वह जीव, मोक्ष-मन्दिर में अनन्त आनन्दसहित सादि-अनन्त काल तक विराजमान होगा। ●

www.vitragvani.com

भूतार्थदृष्टि से ही सच्चा आत्मा दिखता है
और
अपूर्व आनन्द होता है

हे जीव! आत्मा के आनन्द की कमाई का यह मौसम है। सत् समागम से आत्मा की समझ करके सम्यग्दर्शन द्वारा अपने आत्मा में मोक्षमन्दिर का शिलान्यास कर। अब अन्यत्र कहीं रूक मत। शीघ्र अपने चैतन्यरत्न की कमाई कर ले।

देह-देवल में विराजमान चैतन्यमूर्ति आत्मा पवित्र है, वह मङ्गल है। ऐसे आत्मा का लक्ष्य करके उसकी श्रद्धा-ज्ञान करने से आत्मा को अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है। वह माङ्गलिक है। आत्मा के अतिरिक्त शरीरादि परवस्तुओं में 'यह मैं हूँ, यह मेरा है'-ऐसा अहंभाव और ममत्वभाव, वह अमङ्गल है-दु:ख है। आत्मा के भान द्वारा उस ममत्व के पाप को जो गाले, और 'मङ्ग' अर्थात् सुख को लावे, वह सच्चा माङ्गलिक है।

आनन्द के स्वभाव से भरपूर आत्मा को जहाँ अन्तर के श्रद्धा -ज्ञान में स्थापित किया, वहाँ उस धर्मी के अन्तर मन्दिर में दूसरे कोई रागादि परभाव का प्रेम नहीं रहता। जिस प्रकार सती के मन में पति के अतिरिक्त दूसरे का प्रेम नहीं होता; उसी प्रकार सत् ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसे साधनेवाले धर्मात्मा को अपने चिदानन्दस्वभाव के अतिरिक्त दूसरे किसी परभाव का रंग नहीं होता; चैतन्यनाथ का जो रंग लगा, उसमें अब भंग नहीं पड़ता। प्रभो! स्वभाव का स्मरण और विभाव का विस्मरण करके हम आपके मार्ग में आनेवाले हैं; हम आपके कुल के हैं। हे प्रभु!

www.vitragvani.com

मोक्षमार्ग में जिन पदचिह्नों पर आप चले और पूर्ण सुख को प्राप्त करके हमें वह मार्ग बतलाया, उसी मार्ग में आपके पदचिह्नों पर आना वह हमारा मार्ग है। हमारी पर्याय अब अन्तर में गयी है। चिदानन्द आत्मा का ऐसा प्रेम करके उसमें अन्तर्मुख होना, वह मङ्गल है, वह मोक्षमार्ग है, उस मोक्षमार्ग में प्रवेश करने की विधि, सन्त बतलाते हैं।

अहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव मद्रास की ओर पौन्नूर में रहते थे और वहाँ से विदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान की सभा में आये थे; उसके 'हम' साक्षी हैं। जो शुद्धात्मा के प्रचुर आनन्द के स्वसंवेदन में लीन थे, रागरहित स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से आत्मा का अनुभव करते थे, वे विदेहक्षेत्र में जाकर भगवान से जो कलेवा लाये हैं, वह उन्होंने इस समयसार द्वारा प्रियजनों को दिया है, अर्थात् मुमुक्षु जीवों को परोसा है। इसमें जैनशासन की उत्कृष्ट बात है। सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र कैसे हो, उसकी विधि बतलाकर आचार्यदेव ने भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को भगवान की वाणी की प्रसादी प्रदान की है।

जिस प्रकार घर का कोई व्यक्ति बाहर गाँव जाये और वापस आवे, तब साथ में घर के बालकों के लिये और प्रियजनों के लिये भेंट लेकर आता है और अत्यन्त प्रेम से सबको प्रदान करता है; इसी प्रकार कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्र में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में से जो भाग लेकर आये, आत्मा के आनन्द का जो भोजन लेकर आये, वह उन्होंने समयसार द्वारा भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को प्रदान करके महान उपकार किया है।

—ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित समयसार की यह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ग्यारहवीं गाथा पढ़ी जा रही है। आचार्यदेव ने इस गाथा में जैनधर्म का रहस्य भर दिया है।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा सद्दृष्टि निश्चय होय है॥

निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी विवाद का हल हो जाये और आत्मा को सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, ऐसे भाव इस गाथा में भरे हैं। व्यवहार के जो अनेक प्रकार के विकल्प, उनमें सबसे अन्तिम -सबसे सूक्ष्म व्यवहार-'ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा'—ऐसे गुण-गुणीभेदरूप है। ऐसे गुण-गुणीभेदरूप व्यवहार भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है क्योंकि उसके लक्ष्य से भी विकल्प होता है; शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता। अभेद अनुभूतिरूप जो शुद्ध आत्मा, उसे दिखानेवाला शुद्धनय है, वही भूतार्थ है, उसके अनुभव से ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

'ज्ञानस्वरूप आत्मा है'—ऐसे गुण-गुणीभेद का विकल्प, आत्मा का अनुभव करने पर बीच में आयेगा अवश्य परन्तु उसका आश्रय सम्यग्दर्शन में नहीं है। सम्यग्दृष्टि उस विकल्परूप व्यवहार का शरण लेकर अटकता नहीं है, परन्तु उसे भी छोड़नेयोग्य समझकर अन्तर के शुद्ध आत्मा को उस विकल्प से भिन्न अनुभव करता है। ऐसा अनुभव ही वीतराग का मार्ग है। मोक्ष के लिये आत्मा में यह सम्यग्दर्शनरूपी शिलान्यास करने की बात है। भूतार्थदृष्टिरूपी ध्रुव पाया डालकर जिसने आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी शिला रोपी, उसे अल्पकाल में मोक्ष के परम आनन्दरूपी महल होगा।

समयसार की पहली गाथा में सर्व सिद्धों को वन्दन किया...

www.vitragvani.com

अर्थात् अपनी ज्ञानदशा के आँगन में अनन्त सिद्धों को बुलाकर स्वागत किया; जिस ज्ञान में अनन्त सिद्धों का स्वीकार किया, वह ज्ञान, राग से पृथक् पड़ गया है। शरीर में या राग में सिद्धों को नहीं पधराया जा सकता, परन्तु साधक अपनी ज्ञानपर्याय में सिद्धों को पधराता है – किस प्रकार? पर्याय को रागादि से भिन्न करके अन्तर के ज्ञानस्वभाव में एकाग्र करके। वहाँ उस पर्याय में शुद्ध आत्मा का स्वीकार हुआ और शुद्ध आत्मा के स्वीकार में अनन्त सिद्ध भगवन्तों का स्वीकार और सत्कार हुआ। उसके आत्मा में सिद्धपद के लिये सम्यग्दर्शन का शिलान्यास हो गया।

हे भाई! स्वभाव से एकत्वरूप और परभाव से विभक्तरूप ऐसा जो शुद्धात्मा, उसका स्वरूप पूर्व में तूने कभी सुना नहीं-विचार नहीं किया-अनुभव नहीं किया और बाहर की बन्ध-कथा के श्रवण-मनन-अनुभव द्वारा ही तू संसार में दुःखी हुआ है। अब हम तुझे एकत्व-विभक्त शुद्धात्मा दिखलाते हैं, उसे तू स्वानुभव से प्रमाण करना... हाँ ही करके, उसका अनुभव करना। हमें परम आनन्द से भरपूर शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो निज वैभव प्रगट हुआ है, उस समस्त वैभव से इस समयसार में मैं शुद्धात्मा दिखलाता हूँ..... तुम भी उसे स्वानुभव में लेना।

भगवान आत्मा एक ज्ञायकभाव है; उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त ऐसी जो पर्यायें, उतना वह ज्ञायकभाव नहीं। पर्याय के भेदों से पार और गुण के भेद से भी पार परमार्थरूप एक वस्तुरूप आत्मा को देखना, वह सम्यग्दर्शन है। ऐसे आत्मा की दृष्टि अलौकिक है और दूसरे सब विकल्प शुभभाव, वे तो लौकिक हैं। शुभभाव करने की बात

www.vitragvani.com

तो लोक में सब जानते हैं; इसलिए जो शुभराग को धर्म मानते हैं, उन्हें तो लौकिक कहा है। आत्मा का धर्म तो राग से पार अलौकिक है। यह तो सर्वज्ञ भगवान के घर से आया हुआ आनन्द का परोसा है.... वीतरागी स्वाद के पकवान हैं।

अहो! सन्तों की परम कृपा है कि इस आत्मा को वे 'परमात्मा' कहकर बुलाते हैं। पामरपना पर्याय में होने पर भी, उसे मुख्य न करते हुए सन्त कहते हैं कि हे जीव! तू तो भगवान है... अति निर्मल है... आनन्दस्वरूप है। तू भी अपने आत्मा को ऐसा ही देख। तू राग जितना नहीं; तू तो अनन्त गुण के वैभव से भरपूर है। जैनमार्ग में ऐसा परमात्मपना बतलाकर वीतरागी सन्तों ने महान उपकार किया है।

एक व्यक्ति के पास बालपन से ही लाखों-करोड़ों रुपये की पूँजी थी परन्तु उसकी देखरेख उसके मामा करते थे और आवश्यकतानुसार थोड़ी-थोड़ी रकम खर्च करने के लिये देते थे; इसीलिए वह अपने को थोड़ी पूँजीवाला गरीब मान बैठा था। किसी ने उससे कहा : भाई! तू गरीब नहीं, तू तो करोड़ों की मिल्कत का स्वामी है! तब वह कहता है—यह पूँजी तो मेरे मामा की है; वे दें, उतना मैं प्रयोग करता हूँ। उसके हितैषी ने कहा - अरे भाई! यह सब पूँजी तो तेरी स्वयं की ही है, मामा तो मात्र उसकी देखरेख करते हैं किन्तु पूँजी तो तेरी है।

इसी प्रकार आत्मा में अपने अनन्त गुणों का वैभव परिपूर्ण है; शास्त्र और सन्त उसका वर्णन करते हैं परन्तु पर्याय में कम ज्ञान और राग-द्वेष देखकर, अज्ञानी स्वयं को उतना ही गरीब मान बैठा

www.vitragvani.com

है। ज्ञानी उसे समझाते हैं कि बापू! तू छोटा नहीं है, तू रागी नहीं है; तू तो पूर्ण आनन्द और केवलज्ञान के निधान का स्वामी है; तब वह कहता है कि केवलज्ञान और आनन्द इत्यादि वैभव तो सिद्ध भगवान के पास होता है तथा शास्त्र में वह कहा है। ज्ञानी उससे कहते हैं कि अरे! अरिहन्त और सिद्ध भगवन्तों का उनका वैभव उनके पास है और उनके जैसा ही तेरा आत्मवैभव तुझमें है। तेरे ज्ञान-आनन्दादि वैभव तुझमें स्वयं में ही हैं, शास्त्र और ज्ञानी तो उसे तुझे दिखलाते हैं परन्तु वैभव तो तुझमें है; तेरा वैभव कहीं उनके पास नहीं है। इसलिए तू अन्तर्मुख होकर तेरे आत्मा के वैभव को देख-इसका नाम भूतार्थदृष्टि है, यह सम्यग्दर्शन है, यह जैनदर्शन का प्राण है और यह मोक्ष में प्रवेश करने का द्वार है।

सहज एक ज्ञायकभाव, वह आत्मा है। उसे शुद्धनय परभावों से भिन्नरूप अनुभवता है-ऐसे आत्मस्वरूप को जिन्होंने लक्ष्य में लिया, वे निहाल होकर केवलज्ञान और मोक्ष को प्राप्त हुए हैं परन्तु जो ऐसे शुद्ध ज्ञायकभावरूप आत्मा को अनुभव नहीं करते और कीचड़वाले पानी की तरह कर्म के साथ सम्बन्धवाले अशुद्धभावरूप ही आत्मा को अनुभव करते हैं, वे शुद्धात्मा को नहीं देखते होने से संसार में भटकते हैं। शुद्ध आत्मा जो परम एक ज्ञायकभाव, उसे अन्तर में सम्यक्रूप से देखनेवाले जीव ही सम्यग्दृष्टि हैं।

व्यवहार के अनेक प्रकार, पर का संयोग, कर्म का सम्बन्ध, रागादि अशुद्धभाव या द्रव्य-गुण-पर्याय के भेदरूप व्यवहार, वह सब अभूतार्थ है-उसका आश्रय करने से रागादि विकल्प की उत्पत्ति होती है। गुण और गुणी भिन्न तो नहीं, तथापि उन्हें भिन्न

www.vitragvani.com

पाड़कर भेद से कहनेवाले व्यवहार के लक्ष्य से वस्तु के अखण्ड सत्यस्वरूप का अनुभव नहीं होता; इसलिए उस व्यवहार को असत्य कहा है। भेद के विकल्प में न रुककर, अभेद को लक्ष्य में ले तो उसके लिये 'व्यवहार द्वारा परमार्थ का प्रतिपादन' कहने में आया है। जो शुद्ध आत्मा के स्वरूप को देखना चाहते हैं, उन्हें व्यवहार के विकल्पों में नहीं अटकना। गुणभेदरूप व्यवहार बीच में आया, परन्तु उस व्यवहार में ही खड़े रहकर कभी परमार्थ आत्मा का अनुभव नहीं होता। परमार्थ आत्मा को लक्ष्य में लेने पर, उपयोग उसमें विश्रामरूप होकर परम निराकुल आनन्द को अनुभव करता है-इसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे निर्विकल्प उपयोग बिना सम्यग्दर्शन या आनन्द का अनुभव नहीं होता।

आत्मा, ज्ञान द्वारा आत्मा को जानता है-ऐसा भेद पाड़ना, वह भी व्यवहार में जाता है; वह भेद भी अभूतार्थ है। सत्य अर्थात् भूतार्थ आत्मा की अनुभूति में तो ऐसे कोई भेद नहीं रहते; वहाँ तो एक सहज ज्ञायकभाव ही अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव ही मोक्ष को साधने का मौसम है। श्रीगुरु-सन्तों के प्रताप से अभी ऐसा मौसम अपने को प्राप्त हुआ है।

आत्मा का सहज एक ज्ञायकस्वभाव, वह त्रिकाल भूतार्थ है और उसमें अन्तर्मुख होकर जो शुद्धपर्याय हुई, वह भी भूतार्थ के साथ अभेद हुई होने से भूतार्थ है। ऐसे भूतार्थ आत्मा का अनुभव वह अपूर्वभाव है, वह अपूर्व समय है। पर्याय ने अपने उपयोग की थाप अन्तर के भूतार्थस्वभाव में मारी है, उस पर दृष्टि की छाप मारी है, वहाँ भूतार्थ को अवलम्बन करनेवाली पर्याय भी भूतार्थ हुई।

www.vitragvani.com

रागादिभाव अभूतार्थ धर्म हैं और भूतार्थ के आश्रय से प्रगट हुई सम्यग्दर्शनादि पर्याय, वह भूतार्थ धर्म है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल भूतार्थ है और उसका अनुभव करनेवाली पर्याय भी भूतार्थ हुई। 'शुद्धनय भूतार्थ है'-ऐसा कहा है। ऐसे शुद्धनय द्वारा आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्दर्शनरूपी महान हीरा प्राप्त होता है और उसके साथ अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ होता है-ऐसे लाभ का यह अवसर है, आनन्द की कमाई का मौसम है। उसे, हे जीव! तू चूक मत... प्रमाद मत कर... अन्यत्र कहीं रुक मत... शीघ्र तेरे चैतन्य रत्नों की कमायी कर लेना। ●

अहा! आपने मेरा जीवन बचाया

जिसे ऐसी आत्मार्थिता होती है, उसे अन्तर में आत्मा समझानेवाले के प्रति कितना प्रमोद, भक्ति, बहुमान, उल्लास और अर्पणता का भाव होता है! वह आत्मा समझानेवाले के प्रति विनय से अर्पित हो जाता है... अहो नाथ! आपके लिए मैं क्या-क्या करूँ? इस पामर पर आपने अनन्त उपकार किया... आपके उपकार का बदला मैं किसी प्रकार चुका सकूँ - ऐसा नहीं है।

जिस प्रकार किसी को फुँफकारता हुआ भयङ्कर सर्प, फन ऊँचा करके डस ले, तब जहर चढ़ने से आकुल-व्याकुल होकर वह जीव तड़पता हो, वहाँ कोई सज्जन गारूड़ी मन्त्र द्वारा उसका जहर उतार दे तो वह जीव उस सत्पुरुष के प्रति कैसा उपकार व्यक्त करेगा? अहा! आपने मेरा जीवन बचाया, दु:ख में तड़पते हुए मुझे आपने बचाया, इस प्रकार उपकार मानता है।

www.vitragvani.com

अत्यन्त मधुर चैतन्यरस

जो भेदज्ञानरूपी चाबी द्वारा अन्तर में चैतन्य के आनन्दनिधान के ताले खोलकर साधक हुए हैं, जो मोक्ष के पंथ में आरूढ़ हैं, जिन्हें अन्तर में चैतन्य प्रभु का साक्षात्कार हुआ है—ऐसे ज्ञानी-धर्मात्मा, मति-श्रुतज्ञान से चैतन्य के अतीन्द्रियरस का स्वसंवेदन करते हैं। अहा! जगत् के रस से भिन्न प्रकार का चैतन्य का रस है। इन्द्रपद के वैभव में या देवों के अमृत में भी वह रस नहीं। ऐसे अत्यन्त मधुर चैतन्यरस का संवेदन होने पर, ऐसी तृप्ति हुई कि सम्पूर्ण जगत का रस उड़ गया। शान्त चैतन्यरस का मधुर वेदन हुआ, वहाँ आकुलताजनक कषायों से चैतन्य का अत्यन्त भिन्नत्व हुआ। ऐसा मधुर चैतन्यरस चखने पर, देवों के अमृत के स्वाद में से भी रस उड़ गया। मति-श्रुत को स्व-सन्मुख करके धर्मात्मा ऐसे चैतन्य-स्वाद का प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करता है, उसके अन्तर में कोई अपूर्व शान्तभाव उल्लसित होते हैं।

अहा! साधक की अन्दर की क्या स्थिति है—उसकी जगत के जीवों को खबर नहीं है; उसके हृदय के गम्भीर भाव पहचानना साधारण जीवों को कठिन पड़ता है। समझना चाहे तो सब सुलभ है। यह भाव समझे तो शान्तरसरूपी अमृत का सागर उछले और जहर का (कषायों का) स्वाद छूट जाये। यह भेदज्ञान की महिमा है। भेदज्ञान द्वारा ही शान्तरस अनुभव में आता है। भेदज्ञानी होते ही जीव की ऐसी दशा होती है। ज्ञानी-धर्मात्मा, चैतन्यरस के स्वाद के समक्ष जगत् के सभी स्वादों के प्रति सदा ही उदासीन है। राग के प्रति भी अत्यन्त उदासीन है-ऐसे स्वाद को अपना नहीं मानते; स्वयं को एक ज्ञायकभावरूप ही अनुभव करते हैं-ऐसी दशा से ज्ञानी की पहिचान है। ●

www.vitragvani.com

सन्तों की पुकार

स्वानुभवपूर्वक अन्तर में निजपद को साध रहे धर्मात्मा, दूसरे जीवों को भी शुद्ध चैतन्यपद दिखलाकर मोक्षमार्ग में बुलाते हैं कि अरे जीवों! आनन्दमय निजपद की साधना करने के लिये तुम भी इस मार्ग में आओ... इस मार्ग में आओ।

आत्मा चैतन्यस्वरूप है; वह चैतन्यपद स्वयं आनन्दरूप है। अपने ऐसे चैतन्यपद को जो नहीं देखते-अनुभव नहीं करते और रागादि को ही निजपद मान रहे हैं, वे जीव अन्धे हैं-स्वयं अपने स्वरूप को नहीं देखते। ऐसे जीवों को जगाकर उनका शुद्धपद आचार्यदेव दिखलाते हैं... और आवाज लागकर उन्हें मोक्ष के मार्ग में बुलाते हैं।

रे प्राणियों! अशुद्ध रागादि भावों को ही निजरूप मानकर उन्हें ही तुम वेदन कर रहे हो, उतना ही स्वयं को मान रहे हो परन्तु वे भिन्न हैं; जीव का स्वरूप वे नहीं हैं। जीव तो शुद्ध चैतन्यमय है, उसे भूलकर रागादि पर्याय जितना ही स्वयं को अनुभव न करो। राग तो उपाधि है, दुःख है; उस दुःख के मार्ग में न जाओ, न जाओ! वह मार्ग तुम्हारा नहीं है, नहीं है!! यह चैतन्यस्वरूप तुम हो। इस ओर आओ... इस ओर आओ! इस शुद्ध चैतन्यपद को ही अनुभव करो... यही तुम्हारा मार्ग है। शुद्ध-शुद्ध (द्रव्य से शुद्ध, पर्याय से शुद्ध) ऐसे चैतन्यपद में ही तुम्हारा आनन्द है, उसे छोड़कर दूसरे को अनुभव नहीं करो।

अरे! जिसमें से चैतन्य के आनन्द की परिणति झरे—ऐसा

www.vitragvani.com

चैतन्यपद, उसका तो जो अनुभव नहीं करता और राग को ही निजपद समझ रहा है, वह जीव अपने चैतन्यभाव को भूला हुआ है और चार गति के भाव में सो रहा है। जिस-जिस भव में जिस पर्याय को धारण करता है, उस पर्याय को ही अनुभव करने में लवलीन है; मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं रागी हूँ-ऐसा अनुभव करता है, परन्तु उनसे भिन्न अपने शुद्ध ज्ञायकपद को अनुभव नहीं करता, वह अन्ध है। वह विनाशी भावोंरूप ही अपने को अनुभव करता है परन्तु अविनाशी निजपद को नहीं देखता। वह निजपद का मार्ग भूलकर विपरीतमार्ग में चढ़ गया है। सन्त उसे आवाज लगाते हैं कि अरे जीव! रुक जा! विभाव के मार्ग से वापस मुड़... वह तेरे सुख का मार्ग नहीं है, वह तो मायाजाल में फँसने का मार्ग है... इसलिए उस मार्ग से रुक जा और इस ओर आ... इस ओर आ! तेरा आनन्दमय सुखधाम यहाँ है। इस ओर आ। देव तू नहीं, मनुष्य तू नहीं, रागी तू नहीं; तू तो शुद्धचैतन्य है। तेरा अनुभव तो चैतन्यमय है। चैतन्य से भिन्न कोई पद तेरा नहीं-नहीं; वह तो अपद है-अपद है; इसलिए जाग... और निजपद को सम्हाल।

अरे! ऐसा चैतन्यपद देखकर उसे साधने के लिये आठ-आठ वर्ष के कुँवर राजपाठ छोड़कर वन में चले गये, अन्तर में अनुभव किये हुए चैतन्यपद में लीन होने के लिये वीतरागमार्ग में विचरने लगे। जिस चैतन्यपद के अनुभव के समक्ष इन्द्रासन भी अपद लगता है, उसकी महिमा की क्या बात! अरे, तेरा शुद्धचैतन्यस्वरूप जैसा है, वैसा देख तो सही! अमृत से भरपूर इस चैतन्य सरोबर को छोड़कर, ज़हर के समुद्र में मत जा। भाई! दु:खी होने के मार्ग में मत जा... मत जा। इस परभाव के मार्ग से पराङ्मुख हो... पराङ्मुख हो... इस चैतन्य के मार्ग में आ रे, आ। बाहर में तेरा मार्ग नहीं है;

www.vitragvani.com

अन्तर में तेरा मार्ग है। अन्तर में आ... आ। सन्त, प्रेम से तुझे मोक्ष के मार्ग में बुलाते हैं। अभी सोने का अवसर नहीं है, अभी तो जागकर मोक्ष को साधने का अवसर है।

अहा, ऐसे मार्ग में कौन नहीं आयेगा!! कौन विभाव को छोड़कर स्वभाव में नहीं आयेगा? बाहर के राजवैभव को छोड़कर अन्तर के चैतन्य वैभव को साधने के लिये राजा और राजकुमार अन्तर के मार्ग में गमनशील हुए। बाहर के भाव अनन्त काल से किये, अब उन्हें छोड़कर मेरा परिणमन अन्दर मेरे निजपद में झुकता है, अब उस परभाव के पन्थ में मैं नहीं जाऊँगा... नहीं जाऊँगा... नहीं जाऊँगा.... अन्तर के मेरे चैतन्यपद में ही रहूँगा। इस प्रकार स्वानुभूतिपूर्वक धर्मी जीव, निजपद को साधता है... और दूसरे जीवों को भी कहता है कि हे जीवों! तुम भी इस मार्ग में आओ रे आओ! अन्तर में देखा हुआ जो मोक्ष का मार्ग, आनन्द का मार्ग, वह बतलाकर सन्त बुलाते हैं कि हे जीवों! तुम भी हमारे साथ इस मार्ग में आओ... इस मार्ग में आओ। अविनाशीपद का यह मार्ग है... यह सिद्धपद का मार्ग है।

आत्मा स्वयं सत्य अविनाशी वस्तु है। उसके अनुभव से हुआ सुख शाश्वत् अविनाशी है। आत्मा का आनन्द तो स्वयं में है; पर में कहीं आनन्द नहीं है। जिसमें आनन्द न हो, उसे निजपद कैसे कहा जाये? निजपद तो उसे कहते हैं कि जिसमें आनन्द हो। जिसका स्वाद लेने पर, जिसमें रहने पर, जिसमें स्थिर होने पर, आत्मा को सुख का अनुभव हो, वह निजपद है। जिसके वेदन में आकुलता हो, वह निजपद नहीं; वह तो परपद है; आत्मा के लिए अपद है। उसे अपद जानकर, उससे पराङ्मुख होकर इस शुद्ध

www.vitragvani.com

आनन्दमय चैतन्यपद की ओर आओ। सन्त आवाज लगाकर बुलाते हैं कि इस ओर आओ... इस ओर आओ।

जिसमें कोई विकल्प नहीं—ऐसा यह निर्विकल्प एक ही चैतन्यपद आस्वादनयोग्य है। सम्यग्दर्शन में चैतन्य का स्वाद है, सम्यग्ज्ञान में चैतन्य का स्वाद है, सम्यक्चारित्र में भी चैतन्य का स्वाद है। रागादि परभाव का स्वाद तो रत्नत्रय से बाहर है; निजपद में राग का स्वाद नहीं है। राग तो दुःख है, विपदा है; चैतन्यपद में विपदा नहीं है। जिसमें आपदा, वह अपद; जिसमें आपदा का अभाव और सुख का सद्भाव, वह स्वपद। आनन्दस्वरूप आत्मा की सम्पदा से जो विपरीत है, वह विपदा है। राग, वह चैतन्य की सम्पदा नहीं परन्तु विपदा है; वह आत्मा का अपद है। जैसे राजा का स्थान मलिन कचरे में नहीं शोभा देता, राजा तो स्वर्ण के सिंहासन पर शोभता है; इसी प्रकार जीवराजा का स्थान राग-द्वेष -क्रोधादि मलिनभावों में शोभा नहीं देता, उसका स्थान तो अपने शुद्ध चैतन्य सिंहासन में शोभता है। राग में चैतन्य राजा शोभा नहीं देता; वह तो अपद है, अस्थिर है, मलिन है, विरुद्ध है; चैतन्यपद शाश्वत् है, शुद्ध है, पवित्र है, अपने स्वभावरूप है। ऐसे शुद्ध स्वपद को, हे जीवों! तुम जानों... उसे स्वानुभव प्रत्यक्ष करो। ऐसी निजपद की साधना, मोक्ष का उपाय है।

अहा! निजानन्द में डोलता चैतन्यपद, शान्तरस के पिण्डरूप निजपद, यह आत्मा स्वयं है। बाहर में देखने का रस छोड़कर स्वयं अपने चैतन्यपद को निहारने से परम आनन्द होता है। ऐसे आनन्दमार्ग में वीतरागी सन्त बुलाते हैं और मुमुक्षु उत्साह से उस आनन्दमार्ग में जाते हैं। ●

www.vitragvani.com

सन्त बुलाते हैं-आनन्द के धाम में

संसार के राग में सोये हुए अज्ञानी प्राणियों को जगाकर आनन्द के धाम में बुलाते हुए श्री गुरु कहते हैं कि —

अरे जीव! तू तो अतीन्द्रिय आनन्दरस का समुद्र है; आनन्द ही तेरा स्वरूप है और उसे भूलकर तू इन रागादि दुःख-भावों को निजपद मानकर इनमें मोहित हो रहा है। यह क्या तुझे शोभा देता है? तेरा तो आनन्दधाम है। उस आनन्दधाम में तू आ! राग तेरा पद नहीं है।

अरे! देखता-जानता चैतन्यस्वभाव तू स्वयं, और अपने स्वरूप को तू न देखे तथा रागादि अज्ञानभावों को ही अपना स्वरूप मानकर उनका ही अनुभव करे-ऐसा मोहान्धपना कहीं तुझे शोभा नहीं देता। ऐसा अन्धपना अब तू छोड़... और तेरे चैतन्यमय स्व-पद को देखकर उसे अनुभव में ले।

अहा! चैतन्यप्रभु आत्मा ज्ञानपद में बसेगा या राग में बसेगा? राग तो चैतन्यप्रभु को रहने के लिये अपद है; चैतन्यप्रभु तो एक ज्ञानपद में ही रहनेवाला है। अरे! चैतन्यप्रभु! तुझे तेरे चैतन्यपद के आनन्द का वेदन शोभा देता है; राग का वेदन तुझे शोभा नहीं देता। 'राग' कहने पर उसके साथ द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हर्ष-शोक, शुभ-अशुभवृत्तियाँ, ये सब परभाव समझ लेना। इन समस्त परभावों में कहीं चैतन्य का स्थान नहीं है। चैतन्य के लिये वे अस्थान हैं, अपद हैं, चैतन्यपद तो रागरहित है।

चैतन्य महाराजा तो सुख के धाम में बसे वैसा है; वह रागादि

www.vitragvani.com

दु:ख के भाव में कैसे बसे ? राजा कचरे में सोये, यह कहीं उसे शोभा देता है ? नहीं; यह तो उसके लिये अपद है। राजा का स्थान तो हीराजड़ित सिंहासन में होता है। इसी प्रकार जगत में श्रेष्ठ ऐसा यह आत्मभगवान, ज्ञान-आनन्दमय अपने शान्तिधाम में बसनेवाला है; इन रागादि अशुद्धभावों के कचरे में लीन होकर उसमें सुख माने-यह कहीं उसे शोभा देता है ? नहीं; वह तो उसके लिये अपद है, दु:ख है, अशोभा है। आत्मभगवान का स्थान तो अपने अनन्त गुणों की निर्मलपरिणति में होता है; इस प्रकार निजपद बतलाकर, श्रीगुरु इसे जगाते हैं कि अरे भगवान! तू जाग रे जाग! अपार महिमा से भरपूर तेरे शुद्ध चैतन्यपद को तू सम्हाल! तू अनादि अज्ञान से परपद में सो रहा है... निजपद को भूलकर अन्ध हुआ है... हे जीव! अब तो तू जाग! भेदज्ञान चक्षु खोलकर तेरे अन्तर में सुखधाम को देख! तेरा पद कैसा सुन्दर है!

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
बीजुं कहीये केटलुं ? कर विचार तो पाम।

अहा! अनन्त सुख का धाम ऐसा चैतन्यपद, उसे सन्त दिन-रात अपने अन्तर में ध्याकर अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। भगवान! तू भी ऐसे तेरे सुखधाम में आ। राग के वेदन से अनन्त काल तू संसार में भटका, अब वहाँ से वापस मुड़... और इस ओर आ... इस ओर आ। तेरा चैतन्यपद महा आनन्दमय है, उसे तेरे अन्तर में तू देख। जाग रे जाग! अभी यह जागने का अवसर है, निजपद के आनन्द को साधने का यह अवसर है।

इस संसार के दु:ख के वेदन से तुझे छूटना हो और चैतन्य की

www.vitragvani.com

परम वीतरागी शान्ति का वेदन करना हो तो हम राग से भिन्न तेरा स्वपद तुझे बतलाते हैं, उस चैतन्यमय स्वपद को तू अन्तर में देख... परभाव से पराङ्मुख होकर इस स्वभाव की ओर आ।

वाह रे वाह! वीतरागी सन्त, जगत के जीवों को मोक्ष के मार्ग में बुलाते हैं कि इस ओर आओ, इस ओर आओ! अन्तर का आनन्दमय शुद्ध चैतन्यमय पद दिखलाकर कहते हैं कि वाह! यह तुम्हारा स्थिर चैतन्यपद महा आनन्दसहित शोभायमान हो रहा है। इस चैतन्यपद में तुम आओ, इसे ही तुम अनुभव करो और रागादि को परपद जानकर उनका अनुभव छोड़ो। स्वपद में आने से तुम्हें कोई अद्भुत-अपूर्व आनन्द होगा।

प्रभु! तू आनन्द का भण्डार है, तेरी पर्याय में भी आनन्द ही शोभा देता है; तेरी पर्याय में राग शोभा नहीं देता। राग तो अशुद्ध है, तू तो शुद्ध चैतन्यमय है; तेरा कार्य भी शुद्ध ही होता है, रागादि अशुद्धता वह वास्तव में तेरा कार्य नहीं। चैतन्य का कार्य तो चैतन्यभावरूप ही होता है; अचेतनरूप (रागरूप) उसका कार्य नहीं होता। द्रव्य से और पर्याय से सर्व प्रकार से शुद्ध चैतन्यरसमय तेरा निजपद है। अनन्तानन्त गुण की शान्ति का वैभव तुझमें भरा है। ऐसे निज वैभव से भरपूर निजपद को देखकर तू आनन्दित हो —इस प्रकार सन्त आनन्द के धाम में बुलाते हैं।

वाह रे वाह! कैसा सुन्दर है मेरा यह आनन्दधाम!
आनन्दधाम बतलाकर सन्तों ने महान उपकार किया है॥

www.vitragvani.com

सिंह के बच्चे की बात

(आत्मा का सच्चा स्वांग)

सिंह का एक छोटा बच्चा था। वह भूल से बकरियों के झुण्ड में मिल गया और अपना सिंहपना भूलकर स्वयं को बकरी ही मानने लगा। एक बार दूसरे सिंह ने उसे देखा और उसे उसके सिंहपने का भान कराने के लिये, सिंहनाद किया।

सिंह की गर्जना सुनते ही सभी बकरियाँ तो भागने लगीं परन्तु यह सिंह का बच्चा तो निर्भयरूप से खड़ा रहा। सिंह की आवाज का उसे डर नहीं लगा। तब दूसरे सिंह ने उसके समीप आकर प्रेम से कहा — अरे बच्चा! तू बकरी नहीं है, तू तो सिंह है। देख, मेरी दहाड़ सुनकर सब बकरियाँ तो भयभीत होकर भागने लगीं और तुझे डर क्यों नहीं लगा? क्योंकि तू तो सिंह है... मेरी ही जाति का है। इसलिए बकरियों का संग छोड़कर तेरे सिंह-पराक्रम को सम्हाल।

और विशेष विश्वास करने के लिये तू मेरे साथ चल और इस स्वच्छ पानी में अपना मुँह देखकर विचार कर कि तेरा मुँह किसके समान लगता है, मेरे जैसा (अर्थात् सिंह जैसा) लगता है या बकरी जैसा?

अभी विशेष लक्षण बतलाते हुए सिंह ने कहा था कि तू एक आवाज कर... और देख कि तेरी आवाज मेरे जैसी है या बकरी जैसी? सिंह के बच्चे ने दहाड़ लगाई, तब उसे विश्वास हो गया कि मैं सिंह हूँ; पानी के स्वच्छ झरने में अपना मुँह देखकर भी उसे स्पष्ट दिखायी दिया कि मैं तो सिंह हूँ, भ्रम से ही सिंहपना भूलकर, मेरी निजशक्ति को भूलकर मैं अपने को बकरी जैसा मान रहा था।

www.vitragvani.com

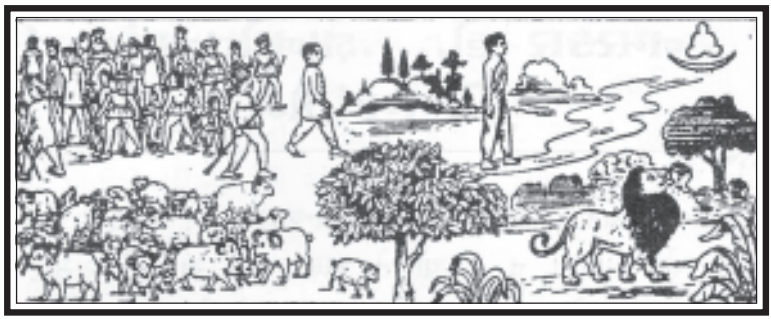

यह तो एक दृष्टान्त है। इसी प्रकार सिंह जैसा, अर्थात् सिद्ध भगवान जैसा जीव अपने सच्चे रूप को भूलकर अपने को बकरी के बच्चे जैसा दीन-हीन-रागी-पामर मान रहा है। धर्म केशरी सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं सर्वज्ञ होकर दिव्यवाणीरूपी सिंहनाद से उसे उसका परमात्मपना बतलाते हैं। अरे जीव! जैसे हम परमात्मा हैं, वैसा ही तू परमात्मा है। दोनों की एक ही जाति है। भ्रम से तूने अपने को पामर माना है और तेरे परमात्मपने को तू भूल गया है परन्तु हमारे साथ तेरी मुद्रा (लक्षण) मिलाकर देख तो सही! तो तुझे विश्वास होगा कि तू भी हमारे जैसा ही है। स्वसंवेदन द्वारा तेरे स्वच्छ ज्ञानसरोवर में देख तो तुझे तेरी प्रभुता तुझमें स्पष्ट दिखायी देगी। स्वसन्मुख वीर्य उल्लसित करके श्रद्धारूपी सिंहनाद कर तो तुझे विश्वास होगा कि 'मैं भी सिद्ध परमात्मा जैसा हूँ, मुझमें भी सिद्ध जैसा पराक्रम भरा है!' प्रभुता से भरपूर तेरा आत्मा अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव में अनन्त स्वभावों सहित परिणमित हो रहा है। ऐसे चैतन्यतत्त्व का भान करते ही निज वीर्य से आत्मा जाग उठता है और अपने चिदानन्दस्वभाव के सन्मुख होकर चार गति का अभाव करके अपने सच्चे स्वाँगरूप सिद्धपद को प्राप्त करता है।

●

www.vitragvani.com

नमस्कार हो... ज्ञानचेतनावन्त मुनिभगवन्तों को

आत्मा स्वतन्त्र, देह से भिन्न, चैतन्यवस्तु है; वह जाननेवाला है। जाननेवाले ने स्वयं अपने को नहीं जाना, यह अज्ञान है और यह संसार है। जाननेवाला स्वभाव, वह ज्ञानचेतनामय है। राग-द्वेष को जानने में ज्ञान को एकाग्र किया, वह अज्ञानी की कर्मचेतना है; और हर्ष-शोकरूप कर्मफल के वेदन में ज्ञान को एकाग्र किया, वह अज्ञानी की कर्मफलचेतना है परन्तु उस रागादि से भिन्न ऐसी ज्ञानचेतना को तो वह अज्ञानी पहचानता ही नहीं है।

जाननेवाले ने स्वयं को नहीं जाना, वह अज्ञानचेतना है; स्वयं को भूलकर दूसरे को जाना और जिसे जाना, उसे अपना मान लिया -ऐसी अज्ञानचेतनापूर्वक जो कुछ व्रत, तप, शास्त्रज्ञान, देव-पूजा इत्यादि शुभभाव करे, वह सब संसार-हेतु ही है; वह मोक्ष का हेतु नहीं होता। ज्ञानी को भी कहीं राग, वह मोक्ष का कारण नहीं है, उसे राग से भिन्न जो ज्ञानचेतना है, वही मोक्ष का कारण है।

— ऐसा ज्ञान तो बहुत थोड़े जीवों को होता है!

—सही बात है, परन्तु थोड़े जीवों में एक स्वयं भी मिल जाना।

प्रश्न : आप कहते हो, वह बात सत्य है, परन्तु आप मुनियों को नहीं मानते—ऐसा लोग कहते हैं।

उत्तर : अरे भाई! प्रतिदिन सबेरे उठते ही सर्व मुनिवरों को नमस्कार करते हैं। 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहकर त्रिकालवर्ती

www.vitragvani.com

सर्व साधु-भगवन्तों को नमस्कार किया जाता है। अहो! मुनिदशा तो अलौकिक परमेष्ठीपद है। मुनि तो भगवान हैं, उन्हें कौन नहीं माने? परन्तु जिसे मुनिदशा हो, उसे मुनि माना जाये न? मुनिदशा तो मोक्ष का मार्ग है, वह तो आत्मा की श्रद्धासहित महा आनन्दरूप वीतरागदशा है। जिसे ऐसी मुनिदशा न हो, श्रद्धा भी सच्ची न हो, मुनि के योग्य आचरण भी न हो-ऐसों को मुनि मान लेने पर तो सच्चे मुनिभगवन्तों का अनादर होता है। सच्चे मुनि को परम आदर से मानते हैं। जिन्हें अन्तर में आत्मा का भान हो और अन्दर बहुत लीनतारूप चारित्रदशा में आत्मा के परम आनन्द की घूँट पीते हों, अत्यन्त दिगम्बरदशा हो-ऐसे मुनि तो भगवान हैं। अभी ऐसे मुनि के दर्शन यहाँ दुर्लभ हैं परन्तु इससे कहीं चाहे जिस विपरीत स्वरूपवाले को मुनि नहीं मान लिया जाता। यह तो वीतराग का मार्ग है, इसमें गड़बड़ नहीं चलती। अपने हित के लिये सच्चा निर्णय करने की यह बात है।

जिसे भव के दु:ख से छूटना हो और आत्मा का मोक्षसुख अनुभव करना हो, उसके लिये यह बात है। मिथ्यात्वरूप जो महान रोग, उससे कैसे छूटा जाये?-इसकी यह विधि बतलाते हैं। जिसने रागादि परभावों में एकता मानी और उनसे भिन्न ज्ञानचेतना को नहीं जाना, उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं तो मुनिदशा कहाँ से होगी? भाई! एक बार तू परभावों से भिन्न तेरी ज्ञानचेतनावन्त वस्तु को अनुभव ले तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा और तेरे जन्म-मरण का अन्त आयेगा। ऐसी ज्ञानचेतना का अनुभव, गृहस्थ को भी चौथे गुणस्थान में होता है। अहा! आठ वर्ष की बालिका भी ऐसा अनुभव कर सकती है। चाहे जितने शुभभाव करे परन्तु ऐसे

www.vitragvani.com

अनुभवरूप ज्ञानचेतना-बिना कभी धर्म नहीं होता।

प्रश्न : शुभराग से धर्म नहीं होता तो फिर सब शुभभाव छोड़ देंगे तो ?

उत्तर : सब राग छोड़ने योग्य है - ऐसी पहले श्रद्धा तो करो। ऐसी श्रद्धा के पश्चात् ही पूजनादि शुभराग भूमिकानुसार होता है परन्तु धर्मी जीव उस राग को ज्ञानचेतना से भिन्न ही जानता है; इसलिए ज्ञानचेतना में से तो सब राग उसने छोड़ ही दिया है। ज्ञानचेतना के साथ राग के एक कण को भी धर्मी जीव मिलाता नहीं है।

देखो भाई! राग हो, वह अलग बात है परन्तु वह राग, राग में है; ज्ञानचेतना में तो राग नहीं। आत्मा के भूतार्थस्वभाव को अनुभव करनेवाली जो चेतना है, वह चेतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, वह रागरहित है और उसे ही परमार्थधर्म कहा है, वही मोक्ष का हेतु है। इसके अतिरिक्त जो व्यवहार का शुभराग है और लोग जिसे धर्म मानते हैं, वह कोई परमार्थधर्म नहीं, वह मोक्ष के कारणरूप धर्म नहीं; वह तो स्वर्ग के कारणरूप, अर्थात् संसार के कारणरूप है। उसे ही अज्ञानी परमार्थरूप से अनुभव करता है, परन्तु ज्ञानचेतनारूप परमार्थधर्म को वह नहीं पहचानता।

मुनिवर तो ऐसी ज्ञानचेतनारूप परमार्थ धर्म के साधक हैं। उसे पहिचाने तो ही मुनि को वास्तव में माना कहा जाये। अज्ञानी, व्रतादि के शुभराग को ही देखता है; इसीलिए मुनि भी वह राग ही करते हैं—ऐसा वह समझता है परन्तु अन्तर में (छिलके से भिन्न चावल की तरह) राग से भिन्न जो शुद्ध ज्ञानचेतना, मुनि को वर्तती

www.vitragvani.com

है, वही मोक्ष का सच्चा कारण है, उसे अज्ञानी नहीं पहिचानता; इसीलिए वास्तव में वह मुनि को नहीं पहिचानता। मुनि का वास्तविक स्वरूप पहिचाने, तब तो मोक्षमार्ग की पहिचान हो जाये और स्वयं को भी ज्ञानचेतनारूप मोक्षमार्ग प्रगट हो।

ऐसी ज्ञानचेतना, धर्म है; शुभराग, धर्म नहीं परन्तु कर्म है। धर्म तो उसे कहा जाता है, जिसके फल में आत्मा का सुख प्राप्त हो। शुभराग के फल में तो पुण्यकर्म बँधता है और उससे संसार के भोग मिलते हैं, उस ओर के झुकाव में तो दुःख है, संसार है। भाई! तुझे भगवान होना हो तो मोक्ष के कारणरूप ज्ञानचेतना का अनुभव कर।

प्रश्न : ऐसा अनुभव और सम्यग्दर्शन करनेयोग्य है, यह बात सत्य है परन्तु वह न हो, तब तक क्या करना?

उत्तर : तब तक उसके लक्ष्य से उसी का उद्यम करना; अन्तर में बारम्बार उसका विचार करके निर्णय करना। सच्चा निर्णय करे तो अनुभव हुए बिना नहीं रहता। राग हो, वह अलग बात है परन्तु सर्व रागरहित ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ-ऐसा लक्ष्य में लेना चाहिए। ऐसे स्वभाव को लक्ष्य में लेकर उसका अभ्यास करने से, उसका रस बढ़ने पर, उपयोग उसमें ढलता है और विकल्प से पार अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादसहित सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के पश्चात् मुनिपना हो, वह तो बहुत निर्मोह वीतरागदशा है। चाहे जैसी सर्दी में भी शरीर पर वस्त्र ढँकने की वृत्ति ही जिन्हें उत्पन्न नहीं होती, अन्तर चैतन्य के शान्तरस में स्थिर होकर बिम्ब हो गये हैं—ऐसे वीतराग दिगम्बर मुनिवर,

www.vitragvani.com

ज्ञानचेतना द्वारा मोक्ष को साध रहे हैं, वे महापूजनीय, वन्दनीय हैं। पंच परमेष्ठी भगवान में उनका स्थान है।

नमस्कार हो ज्ञानचेतनावन्त उन मोक्षमार्गी मुनि-भगवन्तों को।

णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं।

वाह रे वाह सन्तों का पन्थ!

✦ वाह रे वाह मोक्षमार्गी सन्त! कितनी आपकी महिमा करूँ! आपकी चेतना की अगम अपार महिमा तो स्वानुभूतिगम्य है... ऐसी स्वानुभूति द्वारा आपकी सत्य महिमा करता हूँ। विकल्प द्वारा तो आपकी महिमा का माप कहाँ हो सकता है?

✦ स्वानुभूति की निर्मलपर्यायरूप मार्ग द्वारा, हे जीव! तू तेरे चैतन्य के आनन्द-सरोबर में प्रवेश कर। तेरे उपयोग को तेरे अन्तर में ले जा-कि तुरन्त ही तुझे आनन्द की अनुभूति होगी। यह अनुभूति का पन्थ जगत से न्यारा है।

✦ मैं कौन हूँ? 'मैं' अर्थात् ज्ञान और आनन्द; मैं अर्थात् राग या शरीर नहीं-ऐसी अन्तरपरिणति द्वारा आत्मा प्राप्त होता है।

✦ मुझे मेरे आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ काम है, दूसरे किसी के साथ मुझे काम नहीं। मेरे स्वभाव में गहरा उतरकर उसे—एक को ही—सदा भाता हूँ, उसका ही बारम्बार परिचय करता हूँ।

www.vitragvani.com

आत्मा की कीमत कम मत आँक

(कम कीमत करनेवाला आत्मा को ठगता है)

✯एक बालक के पास रत्नों का अमूल्य हार था। एक व्यक्ति ने उससे कहा : सात निंबोली में यह हार देगा ?

✯दूसरे ने उससे कहा कि पेड़ा के बदले में हार देना है ?

✯तीसरे ने कहा कि हजार रुपया लेकर यह हार देना है ?

इस प्रकार वे सब व्यक्ति कम कीमत में हार लेकर उस लड़के को ठगना चाहते थे परन्तु किसी हितैषी प्रामाणिक व्यक्ति ने उसे समझाया कि भाई ! यह हार तू किसी कीमत पर मत बेचना; इसकी कीमत तो बहुत है; अरबों रुपयों से भी इसकी कीमत पूरी नहीं हो सकती। इसकी कीमत तो जगत के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तीन सच्चे रत्नों द्वारा ही हो सकती है।

इसी प्रकार प्रत्येक जीव के पास अनन्त चैतन्यगुणरत्नों से शोभित अमूल्य आत्मस्वभाव है।

✯कोई कुगुरु उसे कहता है कि तुझे देह की क्रिया में आत्मा देना है ?

✯दूसरा कोई कहता है कि तुझे पुण्य में और स्वर्ग के वैभव में आत्मा देना है ?

✯तीसरा कहता है कि शुभराग में तुझे आत्मा बेचना है ?

इस प्रकार वे सब अज्ञानी मनुष्य, जीव के स्वभाव की कम कीमत आँककर उसे ठगना चाहते हैं परन्तु जीव के परम हितैषी

www.vitragvani.com

ज्ञानी सन्त, जीव को समझाते हैं कि हे जीव! तेरे चिदानन्दस्वभाव को तू जड़ की क्रियारूप, पुण्यरूप या रागरूप मत मानना; जड़ द्वारा या राग द्वारा चैतन्य की कीमत मत आँकना। इसकी कीमत तो अचिन्त्य है। यह तो प्रतिक्षण केवलज्ञान और सिद्धपद प्रदान करे—ऐसे निधानवाला है। राग द्वारा या शरीर द्वारा इसकी कीमत नहीं हो सकती; इसकी कीमत तो जगत में उत्कृष्ट में उत्कृष्ट तीन —सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप सच्चे रत्नों द्वारा ही हो सकती है। इसलिए हे जीव! तेरी कीमत तू कम मत आँकना। तू परमात्मशक्ति का भण्डार है।

संसार में बड़े व्यक्ति को कोई छोटा कहे तो रुचता नहीं है और नाराज होता है; राजा को कोई भिखारी कहे तो उसे सुहाता नहीं है; करोड़ की पूँजीवाले को कोई हजार की या लाख की ही पूँजीवाला कहे तो उसे अच्छा नहीं लगता।

तो फिर, आत्मा स्वयं पूर्ण स्वभाववाला परमात्मा होने पर भी अज्ञानी उसे जड़वाला-शरीरवाला-रागवाला और अपूर्ण पामर मनवाते हैं, वह तुझे कैसे रुचता है? आत्मार्थी को तो उसका निषेध आता है कि अरे! यह मेरा स्वरूप नहीं है; मैं तो सिद्ध भगवान जैसा परमात्मा हूँ-इस प्रकार अपने परमात्मस्वभाव का उल्लास से स्वीकार करनेवाला जीव अल्प काल में परमात्मा होता है।

☆कोई शुभराग की कीमत में सम्यग्दर्शन माँगे, अर्थात् शुभराग से सम्यग्दर्शन प्राप्त होना माने तो उसे सम्यग्दर्शन की सच्ची कीमत की खबर नहीं है।

☆जैसे कोई खोटे सिक्के द्वारा स्वर्ण लेने जाये तो वह गुनहगार

www.vitragvani.com

गिना जाता है; उसी प्रकार राग और शरीर की क्रिया, वह खोटा सिक्का है, उसमें चैतन्य की मुद्रा नहीं है; उस खोटे सिक्के द्वारा कोई सम्यग्दर्शनादि धर्म प्राप्त करना चाहे तो वह जैनशासन में गुनहगार है।

☆जो वस्तु लेनी हो, उसकी सच्ची कीमत जाननी चाहिए। आत्मा को प्राप्त करने के इच्छुक जीव को आत्मा का सच्चा स्वरूप जानकर उसकी कीमत आँकना चाहिए और उससे विरुद्ध भावों को आत्मा में नहीं घुसाना चाहिए - ऐसा करने से आत्मवस्तु प्राप्त होती है, अर्थात् आनन्दसहित अनुभव में आती है।●

वह उत्साहपूर्वक उसका सेवन करता है

जिस प्रकार थके हुए व्यक्ति को विश्राम मिलने पर अथवा वाहन आदि की सुविधा मिलने पर वह हर्षित होता है और रोग से पीड़ित मनुष्य को वैद्य मिलने पर वह उत्साहित होता है; इसी प्रकार भव-भ्रमण कर करके थके हुए और आत्मभ्रान्ति के रोग से पीड़ित जीव को थकान उतारनेवाली और रोग मिटानेवाली चैतन्यस्वरूप की बात कान में पड़ते ही, वह उत्साहपूर्वक उसका सेवन करता है। सच्चे सद्गुरु वैद्य ने जिस प्रकार कहा हो, उस प्रकार वह चैतन्य का सेवन करता है। सन्त के समीप दीन होकर भिखारी की तरह 'आत्मा' माँगता है कि प्रभु! मुझे आत्मा का स्वरूप समझाओ।

www.vitragvani.com

अभी ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर

[तत्गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तल्लाभे काल एष ते]

भगवान ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के अवतार में सम्यग्दर्शन-प्राप्ति का अद्भुत रोमांचकारी वर्णन।

भोगभूमि में आर्य दम्पतिरूप से उत्पन्न वज्रजंघ और श्रीमती एक बार कल्पवृक्ष की शोभा निहारते हुए बैठे थे। इतने में आकाश में निकल रहे सूर्यप्रभदेव का विमान देखकर उन दोनों को जातिस्मरण हो गया। जातिस्मरण द्वारा पूर्वभव जानकर वे वैराग्यपूर्वक संसार का स्वरूप विचार रहे थे; तब वहाँ तो वज्रजंघ के जीव ने आकाश में दूर से आ रहे दो मुनियों को देखा और वे मुनिवर भी उन पर अनुग्रह करके आकाशमार्ग से नीचे उतरे। उन्हें सन्मुख आते देखकर तुरन्त ही वज्रजंघ का जीव खड़ा होकर विनय से उनका सत्कार करने लगा। सत्य ही है-पूर्व जन्म के संस्कार जीवों को हित-कार्य में प्रेरित करते हैं। दोनों मुनिवरों के समक्ष अपनी स्त्री सहित खड़ा हुआ वज्रजंघ का जीव ऐसा शोभित होता था कि सूर्य और प्रतिसूर्य के समक्ष जैसा कमलिनीसहित प्रभात शोभित होता है। वज्रजंघ के जीव ने भक्तिपूर्वक दोनों मुनियों के चरण में अर्घ्य चढ़ाकर उन्हें नमस्कार किया; उस समय उनके नयनों से हर्ष के अश्रु निकल-निकलकर मुनिराज के चरण पर पड़ने लगे। मानो कि नयनों द्वारा वह मुनिराज के चरणों का प्रक्षालन ही करता हो! स्त्रीसहित प्रणाम करते इस वज्रजंघ को आशीर्वाद देकर वे दोनों मुनिवर योग्य स्थान पर यथाक्रम बिराजमान हुए।

www.vitragvani.com

तत्पश्चात् सुखपूर्वक बिराजमान उन दोनों मुनिवरों के प्रति विनयपूर्वक वज्रजंघ ने इस प्रकार पूछा : हे भगवान! आप कहाँ बसनेवाले हैं ? आप कहाँ से यहाँ पधारे हैं ? आपके आगमन का कारण क्या है ? वह कृपा करके कहो। हे प्रभो! आपको देखते ही मेरे हृदय में सौहार्दभाव उमड़ रहा है, मेरा चित्त अतिशय प्रसन्न हो रहा है और मुझे ऐसा लगता है कि मानो आप मेरे पूर्व परिचित बन्धु हो! प्रभो! इस सबका क्या कारण है ?-वह अनुग्रह करके मुझे कहो।

इस प्रकार वज्रजंघ का प्रश्न पूर्ण होते ही बड़े मुनिराज उसे इस प्रकार उत्तर देने लगे : हे आर्य! तू मुझे उस स्वयंबुद्ध मन्त्री का जीव जान कि जिसके द्वारा तू महाबल के भव में पवित्र जैनधर्म का प्रतिबोध प्राप्त हुआ था। उस भव में तेरे मरण के बाद मैंने जिनदीक्षा धारण की थी और संन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर सौधर्मस्वर्ग का देव हुआ था; तत्पश्चात् इस पृथ्वी लोक में विदेहक्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रीतिकर नामक राजपुत्र हुआ हूँ और ये (दूसरे मुनि) प्रीतिदेव मेरे छोटे भाई हैं। हम दोनों भाईयों ने स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षा लेकर पवित्र तपोबल से अवधिज्ञान तथा

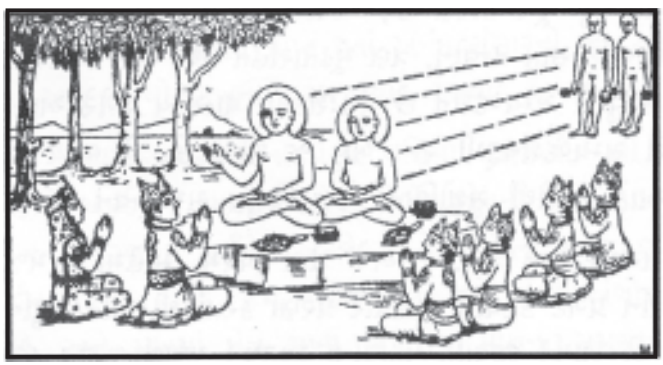

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आकाशगामिनी चारणऋद्धि प्राप्त की है। हे आर्य! हम दोनों ने अवधिज्ञानरूपी नेत्र से जाना कि तुम यहाँ भोगभूमि में उत्पन्न हुए हो; पूर्वभव में आप हमारे परममित्र थे, इसलिए आपको प्रतिबोध करने के लिए हम यहाँ आये हैं।

श्री मुनिराज परम करुणा से कहते हैं - हे भव्य! तू पवित्र सम्यग्दर्शन बिना केवल पात्रदान की विशेषता से ही यहाँ उत्पन्न हुआ है-यह बात निश्चय समझ। महाबल के भव में भी तू मुझसे तत्त्वज्ञान पाया था परन्तु उस समय भोगों की आकांक्षा के वश तू दर्शनशुद्धि को प्राप्त नहीं कर सका था। अब हम दोनों, सर्वश्रेष्ठ तथा मोक्ष के सुख का मुख्य साधन सम्यग्दर्शन देने की इच्छा से यहाँ आये हैं... इसलिए हे आर्य! आज ही तू सम्यग्दर्शन ग्रहण कर!

आहा! मुनिराज के श्रीमुख से परम अनुग्रहयुक्त ये वचन सुनते ही वज्रजंघ का आत्मा कोई अनोखी प्रसन्नता और अद्भुत शान्ति अनुभव करता था।

प्रीतिकर मुनिराज परम अनुग्रहपूर्वक वज्रजंघ के आत्मा को सम्यग्दर्शन अंगीकार कराते हुए कहते हैं कि हे आर्य! तू अभी ही सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर... यह तेरा सम्यक्त्व के लाभ का काल है। **तद्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तल्लाभे काल एष ते**

रे ग्रहण कर सम्यक्त्व को, तत्प्राप्ति का है काल यह।

देशनालब्धि इत्यादि बहिरंगकारण और करणलब्धिरूप अन्तरंग -कारण द्वारा भव्यजीव दर्शनविशुद्धि पाते हैं। जैसे सूर्य का उदय होने पर, रात्रिसम्बन्धी अन्धकार दूर हो जाता है, इसी प्रकार सम्यक्त्वरूप सूर्य का उदय होने पर मिथ्यात्व-अन्धकार नष्ट हो

www.vitragvani.com

जाता है। यह सम्यग्दर्शन ही सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का मूलकारण है; इसके बिना वे दोनों नहीं होते। सर्वज्ञ द्वारा कथित जीवादि सात तत्त्वों का, तीन मूढ़तारहित तथा आठ अंगसहित यथार्थ श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है। नि:शंकता, वात्सल्य इत्यादि आठ गुणरूपी किरणों से सम्यग्दर्शनरूपी रत्न बहुत ही शोभित होता है। हे भव्य! नि:शंकता आदि आठों अंगों से सुशोभित ऐसे विशुद्ध सम्यक्त्व को तू धारण कर।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप और उसकी परम महिमा समझाकर, वह सम्यग्दर्शन प्रगट करने की बारम्बार प्रेरणा प्रदान करते हुए श्रीप्रीतिकर मुनिराज कहते हैं—हे आर्य! जीवादि पदार्थों के स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान करनेवाले इस सम्यग्दर्शन को ही तू धर्म का सर्वस्व समझ। यह सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जगत् में ऐसा कोई सुख नहीं कि जो जीव को प्राप्त न हो, अर्थात् सर्व सुख का कारण सम्यग्दर्शन ही है। इस संसार में वही पुरुष श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त हुआ है... वही कृतार्थ है... और वही पण्डित है... कि जिसके हृदय में निर्दोष सम्यग्दर्शन प्रकाशित होता है।

हे भव्य! तू निश्चितरूप से इस सम्यग्दर्शन को ही सिद्धि प्रसाद का प्रथम सोपान जान। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन ही है, वही दुर्गति के द्वार को रोकनेवाला मजबूत अवरोध है, वही धर्म के वृक्ष का स्थिर मूल है, वही मोक्ष के घर का द्वार है और वही शीलरूपी हार के मध्य में लगा हुआ श्रेष्ठ रत्न है। यह सम्यग्दर्शन जीव को अलंकृत करनेवाला है, दैदीप्यमान है, सारभूत रत्न है, अर्थात् रत्नों में श्रेष्ठ है, सर्वोत्कृष्ट है और मुक्तिश्री को वरण करने के लिये वरमाला है।—हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन

www.vitragvani.com

को तू अपने हृदय में धारण कर... आज ही धारण कर... हम तुझे सम्यक्त्व प्राप्त कराने के लिये ही आये हैं।

जिस पुरुष ने अत्यन्त दुर्लभ इस सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्न प्राप्त कर लिया है, वह अल्प काल में ही मोक्ष तक के सुख को प्राप्त कर लेता है। देखो! जो पुरुष एक मुहूर्त के लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, वह इस महा संसाररूपी बेल को काटकर अत्यन्त छोटी कर डालता है। जिसके हृदय में सम्यग्दर्शन है, वह जीव, उत्तम देव तथा उत्तम मनुष्य पर्याय में ही उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त नरक-तिर्यंच के दुर्जन्म उसे कभी नहीं होते। अहो! इस सम्यग्दर्शन के सम्बन्ध में अधिक क्या कहना! इसकी तो इतनी ही प्रशंसा बस है कि जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर अनन्त संसार का भी अन्त आ जाता है और वह मोक्षसुख का परम स्वाद अभी ही अनुभव करता है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन की परम महिमा समझाकर श्रीमुनिराज कहते हैं कि हे आर्य! तू मेरे वचनों से जिनेश्वरदेव की आज्ञा को प्रमाणभूत करके, अनन्य शरणरूप होकर (अर्थात् उस एक की ही शरण लेकर) सम्यग्दर्शन को स्वीकार कर। जिस प्रकार शरीर के हाथ-पैर इत्यादि अंगों में मस्तक प्रधान है और चेहरे में नेत्र मुख्य है; इसी प्रकार मोक्ष के समस्त अंगों में गणधर आदि आप्त पुरुष, सम्यग्दर्शन को ही प्रधान अंग जानते हैं।

हे आर्य! तू लोक-मूढ़ता, गुरु-मूढ़ता और देव-मूढ़ता का परित्याग करके, मिथ्यादृष्टि जिसे नहीं प्राप्त कर सकते, ऐसी सम्यग्दर्शन की उज्ज्वलता को धारण कर। सम्यग्दर्शनरूपी तलवार द्वारा तू संसाररूपी लता को छेद डाल। तू अवश्य निकट भव्य है

www.vitragvani.com

और भविष्य में तीर्थंकर होनेवाला है। हे आर्य! अरिहन्तदेव के वचनानुसार मैंने यह सम्यग्दर्शन की देशना की है, उसे श्रेय की प्राप्ति के लिए तुझे अवश्य ग्रहण करनायोग्य है।

इस प्रकार आर्य-वज्रजंघ को प्रतिबोधन करने के बाद वे मुनिराज, आर्या-श्रीमती को सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगे —

हे अम्मा! हे माता! तू भी संसार-समुद्र से पार होने के लिये नौका समान इस सम्यग्दर्शन को अति शीघ्ररूप से ग्रहण कर। इस स्त्रीपर्याय में वृथा खेदखिन्न किसलिए होती हो? हे माता! तू बिना विलम्ब सम्यग्दर्शन को धारण कर। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् जीव को स्त्रीपर्याय में अवतार नहीं होता तथा नीचे के छह नरकों में, वैमानिक से हल्के देवों में या दूसरी किसी नीच पर्यायों में वह उत्पन्न नहीं होता। अज्ञानजन्य इस निन्द्य स्त्री-पर्याय को धिक्कार है कि जिसमें निर्ग्रन्थ मुनिधर्म का पालन नहीं हो सकता। हे माता! अब तू निर्दोष सम्यग्दर्शन की आराधना कर और उसकी आराधना द्वारा इस स्त्रीपर्याय का छेद करके क्रम-क्रम से मोक्ष तक के परम स्थानों को प्राप्त कर। तुम दोनों थोड़े से उत्तम भवों को धारण करके ध्यानरूपी अग्नि द्वारा समस्त कर्मों को भस्म करके परमसिद्ध पद को प्राप्त करोगे।

—इस प्रकार प्रीतिकर आचार्य के वचनों को प्रमाण करके आर्य वज्रजंघ ने अपनी सहधर्मिणी के साथ-साथ प्रसन्नचित्त होकर सम्यग्दर्शन धारण किया। वह वज्रजंघ का जीव अपनी प्रिया के साथ सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अतिशय सन्तुष्ट हुआ। सत्य है, अपूर्व

www.vitragvani.com

वस्तु का लाभ प्राणियों को महान सन्तोष उत्पन्न करता ही है। जैसे कोई राजकुमार सूत्र में पिरोयी हुई मनोहर माला प्राप्त करके अपनी राज्यलक्ष्मी के युवराजपद पर स्थित होता है; इसी प्रकार यह वज्रजंघ का जीव भी जैन सिद्धान्तरूपी सूत्र में पिरोयी हुई मनोहर सम्यग्दर्शनरूपी माला प्राप्त करके मोक्षरूपी राज्य सम्पदा के युवराज पद पर स्थित हुआ, तथा विशुद्ध पुरुषपर्याय पाकर मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करती हुई सती आर्या भी सम्यक्त्व की प्राप्ति से अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। पूर्व में कभी भी जिसकी प्राप्ति नहीं हुई थी, ऐसे सम्यग्दर्शनरूपी रसायन को आस्वादन कर, अर्थात् चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव कर वे दोनों दम्पति, कर्म नष्ट करनेवाले जैनधर्म में अतिशय दृढता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार ऋषभदेव का आत्मा पूर्व में सातवें भव में भोगभूमि में सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ... भविष्य में भरतक्षेत्र के आदि तीर्थंकर होकर वे धर्मतीर्थ की आदि करनेवाले हैं—ऐसे आदिनाथ प्रभु के आत्मा में धर्म की आदि हुई। उन धर्म की शुरुआत करनेवाले धर्मात्मा को हमारा नमस्कार हो।

वज्रजंघ और श्रीमती के साथ-साथ, पूर्वभव के सिंह, बन्दर, नेवला, और सूअर ये चार जीव – कि जो आहारदान का अनुमोदन करके उने साथ ही भोगभूमि में उत्पन्न हुए थे, वे भी गुरुदेव प्रीतिकर मुनिराज के चरण-कमल का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनरूपी अमृत को प्राप्त हुए। आनन्दसूचक चिह्नों द्वारा जिन्होंने अपने मनोरथ की सिद्धि प्रगट की है, ऐसे उन दोनों दम्पति को वे दोनों मुनिवर बहुत देर तक धर्म प्रेम से बारम्बार देखते रहे-कृपादृष्टि करते रहे और वह वज्रजंघ का जीव पूर्वभव के प्रेम के कारण

www.vitragvani.com

आँखें फाड़-फाड़कर श्री प्रीतिकर मुनिराज के चरणकमल की ओर देख रहा था तथा उनके क्षणभर के स्पर्श से अत्यन्त ही प्रसन्न हो रहा था।

इस प्रकार उन दोनों मुनिभगवन्तों ने परम अनुग्रहपूर्वक वज्रजंघ इत्यादि जीवों को प्रतिबोध कर अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त कराया, तत्पश्चात् वे दोनों चारण मुनिवर अपने योग्य देश में जाने के लिये तैयार हुए, तब वज्रजंघ के जीव ने उन्हें प्रणाम किया और परमभक्तिपूर्वक कितनी ही दूर तक उनके पीछे-पीछे गमन किया... जाते-जाते दोनों मुनिवरों ने उन्हें आशीर्वाद देकर हितोपदेश दिया... और कहा कि आर्य! फिर से दर्शन हो... तू इस सम्यग्दर्शनरूपी सत्यधर्म को कभी नहीं भूलना - इतना कहकर वे दोनों गगनगामी मुनिवर तुरन्त ही आकाशमार्ग से अन्तर्हित हो गये।

जब दोनों मुनिवर चले गये, तब वह वज्रजंघ का जीव क्षणभर तो बहुत ही उत्कण्ठित हो गया। सत्य ही है कि प्रियजनों का वियोग मन को सन्ताप करता है। बारम्बार मुनिवरों के गुणों के चिन्तवन द्वारा अपने मन को आर्द करके वह वज्रजंघ बहुत समय तक धर्म सम्बन्धी विचार इस प्रकार करने लगा—

अहा! कैसा आश्चर्य है कि साधु पुरुषों का समागम हृदय के सन्ताप को दूर करता है, परम आनन्द को बढ़ाता है और मन की वृत्ति को सन्तुष्ट करता है और उन साधुओं का समागम प्रायः दूर से ही पाप को नष्ट करता है, उत्कृष्ट योग्यता को पुष्ट करता है और कल्याण को बहुत ही बढ़ाता है। उन साधु पुरुषों ने मोक्षमार्ग के साधन में ही सदा अपनी बुद्धि जोड़ी है, लोगों को प्रसन्न करने का

www.vitragvani.com

कोई प्रयोजन उन्हें नहीं रहा है। महापुरुषों का यह स्वभाव ही है कि मात्र अनुग्रहबुद्धि से भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं।

वज्रजंघ का जीव विचार कर रहा है — अहो! मेरा धन्य भाग्य कि मुनि भगवन्त मुझ पर अनुग्रह करके यहाँ पधारे और मुझे सम्यक्त्व प्रदान किया। कहाँ वे अत्यन्त निस्पृह साधु और कहाँ हम! कहाँ तो उनका विदेहधाम! और कहाँ हमारी भोगभूमि! उन निस्पृह मुनिवरों का भोगभूमि में आना और यहाँ के मनुष्यों को उपदेश देना, ये कार्य सहज नहीं, तथापि उन मुनिवरों ने यहाँ पधारकर मुझ पर महान उपकार किया है।

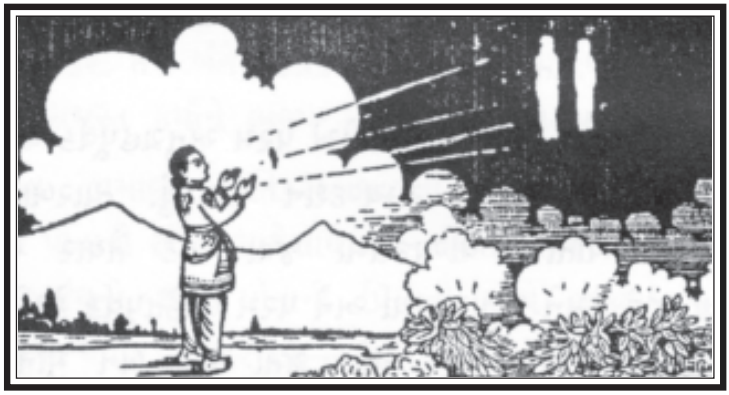

जिस प्रकार इन चारणऋद्धिधारक मुनिवरों ने दूर से आकर हमें धर्म प्राप्त कराकर हम पर महान उपकार किया है, उसी प्रकार महापुरुष धर्म प्राप्त कराकर दूसरों का उपकार करने में महा प्रीति रखते हैं। तप से जिनका शरीर कृष हो गया है, ऐसे वे दोनों तेजस्वी मुनि भगवन्त अभी भी मेरी नजर के सामने ही तैरते हैं, मानों कि अभी भी वे मेरे सन्मुख ही खड़े हैं... मैं उनके चरण-कमल में प्रणाम करता हूँ, और वे दोनों मुनिवर उनका कोमल हाथ मेरे

www.vitragvani.com

मस्तक पर रखकर मुझे स्नेहयुक्त कर रहे हैं! अहा! इन मुनिवरों ने मुझे—धर्म के प्यासे मानव को—सम्यग्दर्शनरूपी अमृत पिलाया है; इससे मेरा मन सन्तापरहित अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है....

आर्य वज्रजंघ उन प्रीतिकर मुनिराज के महान उपकार का बारम्बार चिन्तवन करता है—अहा! वे प्रीतिकर नामक छोटे मुनिराज वास्तव में 'प्रीतिकर' ही हैं, इसीलिए दूर-दूर से यहाँ आकर, मुझे सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर उन्होंने हम पर अपार प्रीति दर्शायी है। वे महाबल के भव में भी मेरे स्वयंबुद्ध नामक गुरु थे और आज इस भव में भी मुझे सम्यग्दर्शन प्रदान कर वे मेरे विशेष गुरु हुए हैं। यदि संसार में ऐसी गुरुओं की संगति न हो तो गुणों की प्राप्ति भी नहीं हो सकती और सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्राप्ति के बिना जीव के जन्म की सफलता भी नहीं होती। धन्य है जगत में ऐसे गुरुओं को, कि जिनकी संगति से भव्य जीवों को सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्राप्ति होती है। ●

वन-जंगल में वीतरागी सन्त प्रतिक्षण प्रतिपल अपने अन्तर तत्त्व को निर्विकल्प होकर अनुभव करते हैं। अहा! धन्य है, वह अनुभव का पल! धर्मी गृहस्थ भी घर में कभी ऐसा निर्विकल्प अनुभव करता है। अहा! अपने अन्तरतत्त्व का निर्णय करे तो अन्तर में उतरकर अनुभव करने का अवसर आवे। स्वद्रव्य कैसा है? उसे पहिचानकर उसे उपादेय करनेयोग्य है। उपादेय किस प्रकार करना? उसके सन्मुख होकर अनुभव किया तो वह उपादेय हुआ और उससे विरुद्ध समस्त विभाव हेय हो गये, उनका लक्ष्य छूट गया... और चैतन्य की महा आनन्दमय अनुभूति रह गयी।

www.vitragvani.com

एक हाथी अद्भुत पराक्रम

भगवान पार्श्वनाथ के जीव को सम्यक्त्व-प्राप्ति का आनन्दकारी वर्णन

अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान पूर्व में मरुभूति थे। मरुभूति और कमठ ये दोनों भाई थे। कमठ ने क्रोध से मरुभूति को मार डाला; मरुभूति मरकर हाथी हुआ है और कमठ का जीव सर्प हुआ है। उसके राजा अरविन्द, वैराग्य से मुनि हुए हैं... मुनिराज अनेक तीर्थों की यात्रा करते-करते देश-देश में विचरण करते हैं और भव्य जीवों को प्रतिबोध प्रदान करते हैं।

सम्मेदशिखर... यह अपने जैनधर्म का महान तीर्थ है, अनन्त जीव यहाँ से सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, इसकी यात्रा करने से सिद्धपद का स्मरण होता है। अनेक मुनि यहाँ आत्मा का ध्यान करते हैं। ऐसे सम्मेदशिखर महान तीर्थ की यात्रा करने के लिये एक बड़ा संघ चला जा रहा है। श्री अरविन्द मुनिराज भी इस संघ के साथ ही है। चलते-चलते संघ ने एक वन में पड़ाव डाला। शान्त वन हजारों मनुष्यों के कोलाहल से गूँज उठा... मानों जंगल में नगरी बस गयी। अरविन्द मुनिराज एक वृक्ष के नीचे आत्मा के ध्यान में विराजमान हैं। इतने में अचानक एक घटना बनी... क्या बना ? वह सुनो-

एक बड़ा हाथी पागल होकर चारों ओर दौड़ा-दौड़ करने लगा और लोग इधर-उधर भागने लगे। कौन है यह हाथी ? थोड़े-से भवों के बाद तो यह हाथी, पार्श्वनाथ भगवान होनेवाला है। जो पूर्वभव में मरुभूति था और मरकर हाथी हुआ है, वही हाथी यह है।

www.vitragvani.com

इसका नाम वज्रघोष है; यह हाथी इस वन का राजा है और भान बिना जंगल में भटक रहा है। सुन्दर वन में एक बड़ा सरोवर है; उसमें हाथी रोज नहाता है, वन के मीठे फल-फूल खाता है और हथनियों के साथ रमता है। निर्जन वन में मनुष्य कभी-कभी ही दिखायी देते हैं।

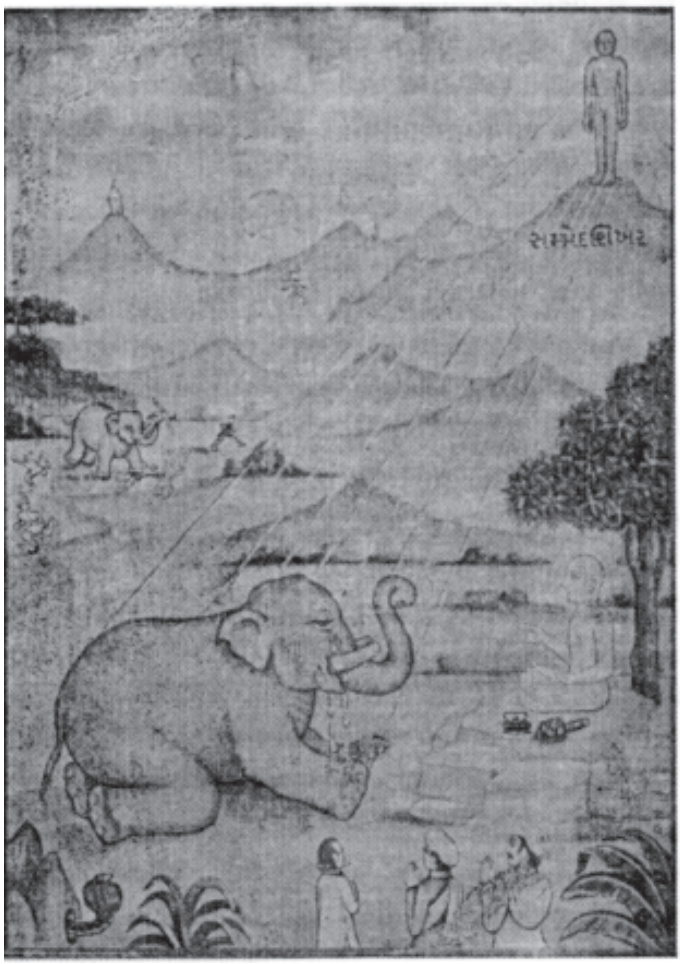

'हाथी मैं नहीं, क्रोध मैं नहीं, मैं शान्त चेतनारूप हूँ-ऐसे अनुभव से आत्मसाधना करके हाथी का जीव परमात्मा बना।'

www.vitragvani.com

जिस वन में यह हाथी रहता था, उसी वन में यात्रासंघ ने पड़ाव डाला; इसलिए वहाँ बड़ा कोलाहल होने लगा। निर्जन वन में इतने अधिक लोग और वाहन, हाथी ने कभी नहीं देखे थे; इसलिए मनुष्यों को देखकर हाथी घबराया और पागल होकर चारों ओर घूमने लगा। जो चपेट में आता उसे मारने लगता। लोग तो चीख-पुकार करके चारों ओर भागने लगे। हाथी ने किसी को पैर के नीचे कुचल डाला तो किसी को सूँड से पकड़कर ऊँचे उछल दिया; रथ को तोड़ डाला और वृक्षों को उखाड़ दिया। बहुत से लोग भयभीत होकर मुनिराज की शरण में पहुँच गये।

पागल हाथी चारों ओर घूमता-घूमता जहाँ अरविन्द मुनिराज विराजमान थे, उस ओर किलकारी करता हुआ दौड़ा। लोगों को भय लगा कि अरे! यह हाथी, मुनिराज का क्या कर डालेगा?

मुनिराज तो शान्त होकर बैठे हैं। उन्हें देखते ही सूँड ऊँची करके हाथी उनकी ओर दौड़ा... परन्तु....

—परन्तु मुनिराज के हृदय में एक चिह्न देखते ही वह हाथी एकदम शान्त हो गया... उसे लगा कि अरे! इन्हें तो मैंने कहीं देखा है... यह मेरे कोई परिचित और हितैषी हों, ऐसा मुझे लगता है। ऐसे विचार में हाथी तो एकदम शान्त होकर खड़ा रहा; उसका पागलपन मिट गया और मुनिराज के सामने सूँड झुकाकर बैठ गया।

लोग तो आश्चर्यचकित हो गये कि अरे! मुनिराज के समीप आते ही यह पागल हाथी अचानक शान्त कैसे हो गया! यह प्रसंग देखकर चारों ओर से लोग वहाँ मुनिराज के समीप दौड़े आये। मुनिराज ने अवधिज्ञान द्वारा हाथी के पूर्वभव को जान लिया और

www.vitragvani.com

शान्त हुए हाथी को सम्बोधन करके कहा—अरे बुद्धिमान! यह पागलपन तुझे शोभा नहीं देता। यह पशुता और यह हिंसा तू छोड़! पूर्वभव में तू मरुभूति था; तब मैं अरविन्द राजा था, वह मुनि हुआ हूँ और तू मेरा मन्त्री था, परन्तु आत्मा का भान भूलकर तू आर्तध्यान से इस पशुपर्याय को प्राप्त हुआ है... इसलिए हे गजराज! अब तो तू चेत... और आत्मा को पहिचान।

मुनिराज के मधुर वचन सुनकर हाथी को अत्यन्त वैराग्य हुआ, उसे अपने पूर्वभव का जातिस्मरणज्ञान हुआ। अपने दुष्कर्म के प्रति उसे बहुत पश्चाताप हुआ; उसकी आँखों से आँसुओं की धारा गिरने लगी। विनय से मुनिराज के चरणों में सिर झुकाकर, उनके सन्मुख देखता रहा... सहज ही उसका ज्ञान इतना खिल गया कि वह मनुष्य की भाषा समझने लगा... और मुनिराज की वाणी सुनने के प्रति उसे जिज्ञासा जागृत हुई।

मुनिराज ने देखा कि इस हाथी के जीव के परिणाम अभी विशुद्ध हुए हैं, इसे आत्मा समझने की तीव्र जिज्ञासा जागृत हुई है... और यह एक होनहार तीर्थंकर है... इसलिए अत्यन्त प्रेम से / वात्सल्य से वे हाथी को उपदेश देने लगे—अरे हाथी! तू शान्त हो। यह पशुपर्याय कहीं तेरा स्वरूप नहीं है, तू तो देह से भिन्न चैतन्यमय आत्मा है। आत्मा के ज्ञान बिना अनेक भवों में तूने बहुत दुःख भोगे हैं। अब तो आत्मा का स्वरूप जान और सम्यग्दर्शन को धारण कर। सम्यग्दर्शन ही जीव को महान सुखकर है। राग और ज्ञान को एकमेक अनुभव करने का अविवेक तू छोड़... छोड़! तू प्रसन्न हो... सावधान हो... और सदा उपयोगरूप स्वद्रव्य ही मेरा है-ऐसा तू अनुभव कर। इससे तुझे बहुत आनन्द होगा।

www.vitragvani.com

हाथी अत्यन्त भक्ति से सुनता है। मुनिराज के श्रीमुख से आत्मा के स्वरूप की ओर सम्यग्दर्शन की बात सुनते हुए उसे महान हर्षोल्लास हुआ है। उसके परिणाम अधिक से अधिक निर्मल होते जाते हैं... उसके अन्तर में सम्यग्दर्शन की तैयारी चल रही है।

मुनिराज उसे आत्मा का परम शुद्धस्वरूप दिखलाते हैं—रे जीव! तेरा आत्मा अनन्त गुणरत्नों का खजाना है... यह हाथी का स्थूल शरीर तो पुद्गल है, यह कहीं तू नहीं है; तू तो ज्ञानस्वरूप है। तेरे ज्ञानस्वरूप में पाप तो नहीं और पुण्य का शुभराग भी नहीं; तू तो वीतरागी आनन्दमय है-ऐसे तेरे स्वरूप को तू अनुभव में ले... और उसकी श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन धारण कर।

जगत में सम्यग्दर्शन ही जीव को साररूप है; वही मोक्ष की सीढ़ी है, वही धर्म का मूल है; सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी धर्म -क्रिया नहीं होती; सम्यग्दर्शन के बिना समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं। सम्पूर्ण संसार, मिथ्यात्व के दावानल में सुलग रहा है; उसमें से यह सम्यग्दर्शन ही जीव को तारणहार है। वीतराग सर्वज्ञ अरिहन्तदेव, रत्नत्रय धारक दिगम्बर मुनिराज-गुरु और हिंसारहित वीतरागभावरूप धर्म-ऐसे देवे-गुरु धर्म को पहिचान कर, श्रद्धा कर अत्यन्त भक्ति

www.vitragvani.com

से उनका आदर कर और उन्होंने आत्मा का जैसा शुद्धस्वरूप कहा है, वैसा तू जान, उसकी श्रद्धा कर... ऐसे सम्यग्दर्शन से तेरा परम कल्याण होगा।

—ऐसे बहुत प्रकार से मुनिराज ने सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया... उसे सुनकर हाथी के परिणाम अन्तर्मुख हुए... और अन्तर में अपने आत्मा का सच्चा स्वरूप देखकर उसे सम्यग्दर्शन हुआ... परम आनन्द का अनुभव हुआ... उसे ऐसा लगा कि 'अहा! अमृत का सागर मेरे आत्मा में डोल रहा है... परभावों से भिन्न सच्चा सुख मेरे आत्मा में अनुभव आ रहा है। क्षणमात्र ऐसे आनन्द के अनुभव से अनन्त भव की थकान उतर जाती है।' —ऐसे आत्मा का बारम्बार अनुभव करने का उसका मन हुआ... उपयोग बारम्बार अन्तर में एकाग्र होने लगा। इस अनुभव की अचिन्त्य अपार महिमा का कोई पार नहीं था। बारम्बार उसे ऐसा लगा कि अहो! इन मुनिराज ने अद्भुत उपकार करके आत्मा का मूल स्वरूप मुझे समझाया। आत्म-उपयोग सहजरूप से शीघ्रता से अपने स्वस्वरूप की ओर झुकने से सहज निर्विकल्पस्वरूप अनुभव में आया... चैतन्य प्रभु अपने 'एकत्व' में आकर निजानन्द में डोलने लगा... वाह! आत्मा का स्वरूप कोई अद्भुत है। उसमें मात्र शान्तरस का ही वेदन है, अनन्त गुण का रस उसमें समाहित है-ऐसे परमतत्त्व को पाकर मेरे चैतन्य प्रभु को मैंने मुझमें ही देखा।

—ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर हाथी के आनन्द का कोई पार नहीं है। उसकी आनन्दमय चेष्टायें तथा उसकी आत्मशान्ति देखकर मुनिराज को भी ख्याल आ गया कि यह हाथी का जीव आत्मज्ञान को प्राप्त हुआ है, भव का छेद करके यह मोक्ष के मार्ग में आया है।

www.vitragvani.com

मुनिराज ने प्रसन्न होकर, हाथ उठाकर, हाथी को आशीर्वाद दिया।

संघ के हजारों लोग यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए। एक क्षण में यह सब क्या हो रहा है, यह सब आश्चर्य से देखने लगे।

आत्मा का ज्ञान होने पर हाथी तो बहुत ही भक्तिभाव से मुनिराज का उपकार मानने लगा... अरे! पूर्व में आत्मा के भान बिना आर्तध्यान करने से मैं पशुदशा को प्राप्त हुआ, परन्तु अब इन मुनिराज के प्रताप से मुझे आत्मभान हुआ है और उस आत्मा के ध्यान द्वारा अब मैं परमात्मा होऊँगा-ऐसा विचारकर वह हाथी, सूँड झुकाकर मुनिराज को नमस्कार कर रहा था। अपूर्व आत्मलाभ से वह अत्यन्त तृप्त-तृप्त हुआ था।

(देखो तो सही, बन्धुओं! अपना जैनधर्म कैसा महान है कि इसके सेवन से एक पशु भी आत्मज्ञान करके परमात्मा बन सकता है! प्रत्येक आत्मा में परमात्मा होने की सामर्थ्य है-ऐसा अपना जैनधर्म बताता है। वाह... जैनधर्म... वाह...!)

मुनिराज से सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर हाथी के साथ-साथ दूसरे भी बहुत से जीव, सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। जैसे तीर्थंकर अकेले मोक्ष में नहीं जाते, दूसरे बहुत से जीव भी उनके साथ मोक्ष प्राप्त करते हैं; इसी प्रकार यहाँ तीर्थंकर का आत्मा सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर, दूसरे बहुत से जीव भी उनके साथ सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए और चारों ओर धर्म की जय-जयकार हो गयी। थोड़ी देर पहले जो हाथी पागल होकर हिंसा करता था, वही हाथी अब आत्मज्ञानी होकर शान्त अहिंसक बन गया और मुनिराज से पुनः धर्म सुनने के लिये आतुरता से उनके सन्मुख देखता रहा। बहुत से श्रावक भी उपदेश सुनने के लिये बैठे थे।

www.vitragvani.com

मुनिराज से धर्म का उपदेश सुनकर बहुत से जीवों ने व्रत धारण किये। हाथी को भी भावना जागृत हुई कि यदि मैं मनुष्य होता तो मैं भी उत्तम मुनिधर्म अंगीकार करता; इस प्रकार मुनिधर्म की भावनासहित उसने श्रावकधर्म अंगीकार किया। मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके उसने पाँच अणुव्रत धारण किये... वह श्रावक बना।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करके व्रतधारी हुआ वह व्रजघोष हाथी बारम्बार मस्तक झुकाकर अरविन्द मुनिराज को नमस्कार करने लगा, सूँड़ ऊँची-नीची करके उपकार मानने लगा। हाथी की ऐसी धर्म चेष्टायें देखकर श्रावक बहुत प्रसन्न हुए और जब मुनिराज ने प्रसिद्ध किया कि यह हाथी का जीव, आत्मा की उन्नति करते-करते भरतक्षेत्र में तेईसवाँ तीर्थंकर होगा-तब तो सबके हर्ष का पार नहीं रहा; हाथी को धर्मात्मा जानकर बहुत प्रेम से श्रावक उसे निर्दोष आहार देने लगे।

यात्रासंघ थोड़े समय उस वन में रुककर फिर सम्मेदशिखर की ओर रवाना हुआ; हाथी का जीव थोड़े भव पश्चात् इसी सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त करनेवाला है। उसकी यात्रा करने संघ जा रहा है। अरविन्द मुनिराज भी संघ के साथ विहार करने लगे, तब हाथी भी अत्यन्त विनयपूर्वक अपने गुरु को पहुँचाने के लिए थोड़े दूर तक पीछे-पीछे गया... अन्त में बारम्बार मुनिराज को नमस्कार करके गदगद भाव से अपने वन में वापस आया और चैतन्य की आराधनापूर्वक अपूर्व शान्तिमय जीवन जीने लगा।

वाह! धन्य है उस हाथी को... जो कि मोक्ष का आराधक बना। ●

www.vitragvani.com

महावीर भगवान के जीव को

सिंहपर्याय में सम्यग्दर्शन

महावीर भगवान का जीव, पूर्व में आत्मज्ञान प्राप्त करने से पहले तीव्र मिथ्यात्व के सेवन से समस्त अधोगति में जन्म-मरण कर-करके अत्यन्त ही थका और खेदखिन्न हुआ। अन्त में एक बार राजगृही में ब्राह्मणपुत्र हुआ। वह वेदपुराण में पारंगत था, परन्तु सम्यग्दर्शनरहित होने से उसका ज्ञान और तप सब व्यर्थ था। वह मरकर स्वर्ग में गया, पश्चात् राजगृही में विश्वनन्दि नामक राजपुत्र हुआ, जैनदीक्षा लेकर निदानसहित मरणकर स्वर्ग में गया और वहाँ से बाहुबलीस्वामी के वंश में त्रिपुष्ट नाम का अर्धचक्री वासुदेव होकर, आर्तध्यान से मरकर सातवें नरक गया। अरे! उस नरक के घोर दु:खों की क्या बात! संसार-भ्रमण में भ्रमते जीव ने अज्ञान से कौन से दु:ख नहीं भोगे हों!! महाकष्ट से असंख्यात वर्ष की वह घोर नरक यातना का भोग पूर्ण करके वह जीव, गंगा किनारे सिंहगिरि पर सिंह हुआ... वापस ज्वाजलयमान अग्नि जैसे पहले नरक में गया... और वहाँ से निकलकर जम्बूद्वीप के हिमवन पर्वत पर दैदीप्यमान सिंह हुआ... महावीर का जीव इस सिंहपर्याय में आत्मलाभ को प्राप्त हुआ। किस प्रकार प्राप्त हुआ? यह प्रसंग देखते हैं :—

एक बार वह सिंह, क्रूररूप से हिरण को फाड़कर खा रहा था। तब आकाशमार्ग से जा रहे दो मुनियों ने उसे देखा और 'यह जीव भरतक्षेत्र में अन्तिम तीर्थंकर होनेवाला है'—ऐसे विदेह के तीर्थंकर के वजन का स्मरण हुआ; इसलिए दयावश आकाशमार्ग से नीचे

www.vitragvani.com

उतरकर मुनियों ने सिंह को धर्म का सम्बोधन किया—

'हे भव्य मृगराज! इससे पूर्व त्रिपुष्ट वासुदेव के भव में तूने बहुत वांछित विषय भोगे हैं और नरक के अनेक प्रकार के घोर दु:खों को भी अशरणरूप से आक्रंद कर-करके तूने भोगे हैं, तब दशों दिशाओं में शरण के लिये तूने पुकार की परन्तु कहीं तुझे शरण नहीं मिली। अरे! अभी भी क्रूरतापूर्वक तू पाप का उपार्जन कर रहा है? तेरे घोर अज्ञान के कारण अभी तक तूने तत्त्व को नहीं जाना; इसलिए शान्त हो... और इस दुष्ट परिणाम को छोड़।

आकाशमार्ग से उतरकर अपने सन्मुख निर्भयरूप से खड़े हुए मुनिवरों को देखकर सिंह भी आश्चर्य को प्राप्त हुआ। अरे! सामान्य मनुष्य तो मुझे देखकर भय से दूर भागते हैं, उसके बदले ये मुनिवर तो आकाश में से उतरकर निर्भयरूप से मेरे सन्मुख आकर खड़े हैं! दुनिया के साधारण प्राणियों की अपेक्षा ये कोई अलौकिक पुरुष हैं। इनकी शान्ति कोई परम अद्भुत है। ये मुझसे भय नहीं

www.vitragvani.com

पाते परन्तु प्रेमपूर्वक मेरे हित के लिये अत्यन्त मधुर वचन से मुझे सम्बोधन कर रहे हैं।

मुनिराज के मधुर वचन सुनते ही सिंह को पूर्व भवों का ज्ञान हुआ, आँखों में से आँसुओं की धारा टपकने लगी, परिणाम विशुद्ध हुए... तब मुनिराज ने देखा कि इस सिंह के परिणाम शान्त हुए हैं और यह मेरी ओर आतुरता से देख रहा है, इसलिए यह अभी अवश्य सम्यक्त्व को ग्रहण करेगा।

—ऐसा विचारकर मुनिराज ने उसे पूरूरवा भील से लेकर उसके अनेक भव बतलाकर कहा कि हे शार्दूल! अब से दसवें भव में तू भरतक्षेत्र का तीर्थंकर होगा—ऐसा श्रीधर तीर्थंकर के श्रीमुख से विदेह में हमने सुना है। इसलिए हे भव्य! तू मिथ्यामार्ग से निवृत हो और आत्महितकारी ऐसे सम्यक्मार्ग में प्रवृत्त हो। मोक्षमार्ग बतलाकर असंख्य जीवों का तारणहार, तू अभी इन निर्दोष जीवों का भक्षक हो रहा है-यह तुझे शोभा नहीं देता। इसलिए यह क्रूरता छोड़ और शान्त हो। अरे! कहाँ चैतन्य की शान्ति! और कहाँ यह क्रूरता? यह क्रूरता, यह कषाय, यह हिंसा - इसमें अनन्त दुःख और अशान्ति है। तेरा चैतन्यतत्त्व परम शान्त है... उस शान्तरस का अपूर्व स्वाद अब तू चख। तेरी भव्यता से प्रेरित हम, तुझे प्रतिबोध प्राप्त कराने के लिये ही आये हैं... इसलिए अभी ही तू प्रतिबुद्ध हो।

महावीर का जीव (सिंह) मुनिराज के ऐसे उत्तम वचन से तुरन्त प्रतिबोध को प्राप्त हुआ; उसने अत्यन्त भक्ति से बारम्बार मुनियों को प्रदक्षिणा दी और उनके चरणों में नम्रीभूत हो गया।

www.vitragvani.com

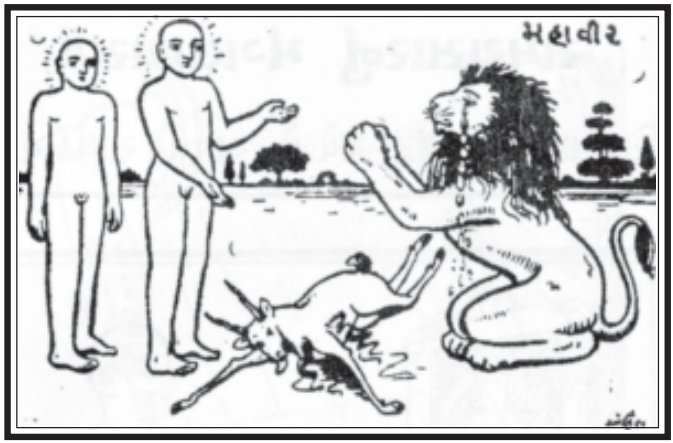

रौद्ररस के बदले तुरन्त ही शान्तरस प्रगट किया और वह सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ... इतना ही नहीं, उसने निराहार व्रत अंगीकार किया। अहा! सिंह की शूर-वीरता सफल हुई। शास्त्रकार कहते हैं कि उस समय उसने वैराग्य से ऐसा घोर पराक्रम प्रगट किया कि यदि तिर्यंच गति में मोक्ष होता तो अवश्य वह मोक्ष को पाया होता! उस सिंहपर्याय में समाधिमरण करके सिंहकेतु नाम का देव हुआ। तत्पश्चात् आत्मा की आराधना में अनुक्रम से आगे बढ़ते-बढ़ते वह जीव इस भरतक्षेत्र में चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर परमात्मा हुए, उन्हें नमस्कार हो।●

www.vitragvani.com

समयसार का मङ्गलाचरण

सिद्ध के लक्ष्य से शुरु हुआ अपूर्व साधकभाव

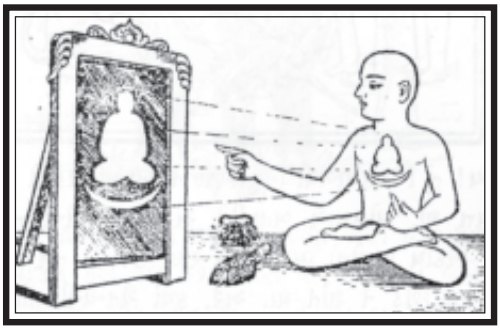

समयसार की पहली गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि अहो सिद्धभगवन्तों! पधारो... पधारो... पधारो...! अपने ज्ञान में मैं निर्विकल्प अनुभूति के बल से सिद्ध भगवन्तों को पधराता हूँ। जिस ज्ञानपर्याय में सिद्ध प्रभु विराजे, उस ज्ञानपर्याय में राग नहीं रह सकता। राग से पृथक् पड़ी मेरी ज्ञानपर्याय में इतना फैलाव है कि उसमें अनन्त सिद्ध भगवन्तों को समाहित कर प्रतीति में लेता हूँ। अतीन्द्रिय आनन्दरूप हुए अनन्त सिद्धों को आमन्त्रण करनेवाले साधक का आत्मा भी इतना ही बड़ा है-ऐसे आत्मा के लक्ष्य से समयसार की अपूर्व शुरुआत होती है।

—ऐसे समयसार का श्रोता भी अपूर्वभाव से श्रवण करते हुए कहता है कि हे प्रभो! जैसे आप स्वानुभूति के बल से सिद्ध भगवन्तों को आत्मा में स्थापित करके निजवैभव से शुद्धात्मा दिखलाते हो, वैसे हम भी हमारे ज्ञान में सिद्धप्रभु को पधराकर और ज्ञान में से राग को निकालकर, स्वानुभूति के बल से आपके द्वारा बताये हुए शुद्धात्मा को प्रमाण करते हैं।-इस प्रकार गुरु-शिष्य की सन्धि के अपूर्वभाव से समयसार सुनते हैं। ●

www.vitragvani.com

चलो, चलो... सब कुन्दप्रभु के साथ सिद्धालय में जायें

अनन्त सिद्ध भगवन्तों को आत्मा में स्थापित करके, उनके समान साध्यरूप शुद्धात्मा के अनुभव द्वारा आराधकभाव की झनझनाहट करानेवाला अपूर्व मंगलाचरण करके आचार्यदेव ने समयसार की शुरुआत की है।

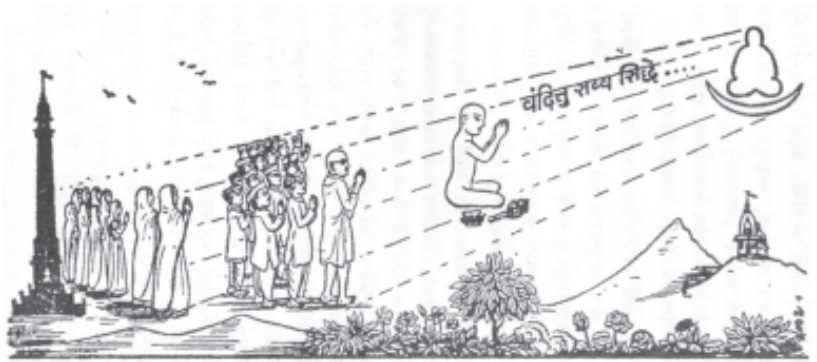

अहो! यह समयसार जगत का अजोड़ चक्षु है। वह आनन्दमय आत्मा को प्रत्यक्ष करता है, अर्थात् अतीन्द्रिय परम आनन्द का अनुभव, वह इस समयसार के श्रवण का फल है। अहो! अद्भुत आनन्दकारी आत्मा का जिसमें कथन है—ऐसे इस समयसार द्वारा हमने शुद्धात्मा दिखलाया है; तुम स्वानुभव से उसे प्रमाण करना। मात्र परलक्ष्य से हाँ करके नहीं अटकना परन्तु तुम्हारे अपने स्वानुभव में लेकर प्रमाण करना।

अहो! ऐसे सन्त और ऐसे समयसार द्वारा ऐसे शुद्धात्मा का श्रवण मिला तो अब उसके अनुभव का यह अवसर है-ऐसा

www.vitragvani.com

समझकर, हे जीव! आनन्दमय चैतन्यतत्त्व को तू आज ही अनुभव में ले। दूसरा सब भूल जा... निर्विकल्प होकर आत्मा को अनुभव करने का यह उत्तम काल है। इसलिए आज ही अनुभव कर... और सिद्धों की मण्डली में आ।

अहो! बड़ों का आमन्त्रण भी बड़ा है। सिद्ध परमेश्वर के मार्ग में जाने की यह बात है। अहा! सिद्धों के लक्ष्य से ऐसे समयसार का श्रवण, वह जीवन का सुनहरा प्रसंग है। हे भव्यश्रोता! इस समयसार द्वारा चैतन्य तत्त्व की अचिन्त्य महिमा सुनकर, ज्ञान को अन्दर एकाग्र करके शुद्धात्मा का घोलन करते-करते तेरी परिणति शुद्ध होगी। सुनते समय उपयोग का जोर श्रवण के विकल्प पर नहीं परन्तु अन्दर शुद्धात्मा पर जोर है-ऐसे शुद्धात्मा की ओर के जोर से जो उठा, उसका मोह टूट जायेगा और सम्यग्दर्शनादि अपूर्व साधकदशा खिल जायेगी। ऐसे कोलकरारपूर्वक इस समयसार की रचना है। इसका भाव श्रवण करते हुए आत्मा में आराधकभाव की झनझनाहट बोलती है... और आनन्द का वेदन करते-करते वह साधक जीव, सिद्धपद लेने चला जाता है। ●

www.vitragvani.com

साधक के अन्तर में समयसार उत्कीर्ण है

[सोनगढ़ में वीर संवत् २४९९ के माघसर कृष्ण अष्टमी को श्री कुन्दकुन्द प्रभु के आचार्यपद प्रतिष्ठापना का मंगल दिन आनन्द से मनाया गया और उस दिन पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से इटली की मशीन द्वारा समयसार परमागम संगमरमर पर उत्कीर्ण करना प्रारम्भ हुआ, उस प्रसंग के भावभीने प्रवचन में गुरुदेव ने कहा कि—]

आज कुन्दकुन्द आचार्यदेव का आचार्यपदवी का महान दिन है। वे आत्मा के आनन्द में झूलते महान सन्त थे। दो हजार वर्ष पहले वे इस भरतभूमि में मद्रास के समीप पौन्नूर पर्वत पर बिराजमान थे। वे विदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे और आठ दिन रहकर भगवान की वाणी सुनी थी; उन्होंने इन समयसार आदि महान परमागमों द्वारा शुद्धात्मा दिखलाकर भव्य जीवों पर महान उपकार किया है। साधक-सन्तों को आत्मा की अनुभवदशा में झूलते-झूलते शास्त्र रचना का विकल्प आया और इन समयसारादि शास्त्रों की रचना हो गयी; उसमें विकल्प का या शब्दों का कर्तृत्व उनके ज्ञान में नहीं। ज्ञान में विकल्प से भिन्न ज्ञान का घोलन चल रहा है, यही मुख्य है।

सम्यग्दृष्टि अपनी ज्ञानचेतनारूप परिणमता है। उसमें चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द-स्वाद का वेदन होता है; और उस वेदन द्वारा 'मेरा सम्पूर्ण आत्मा ऐसा आनन्दमूर्ति-चैतन्यमूर्ति है'—ऐसा धर्मी को भान होता है। इस प्रकार स्वभाव में एकत्व और राग से भिन्नता के अनुभवसहित आत्मा की जो प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। उसका अचिन्त्यस्वरूप आचार्यदेव ने आत्मा के वैभव से इस

www.vitragvani.com

समयसार में दिखलाया है। अहा! चैतन्य भगवान, जिसमें पूर्णानन्दरूप से अनुभव में आया, उस सम्यग्दर्शन की क्या बात! लोगों को सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसका पता नहीं है। धर्मी को जहाँ आनन्दस्वरूप आत्मा के अनुभवसहित अन्तर में सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में भगवान की प्रतिष्ठा हुई; आत्मा अपने आनन्द का स्वाद लेकर ज्ञानरूप हुआ। वहाँ अब राग नहीं रह सकता, उसकी दृष्टि में तो आनन्दमय आत्मा ही बिराजमान है। समयसार परमात्मा की उसने अपने में प्रतिष्ठा की है। साधक के अन्तर में समयसार बिराजमान है।

अहो, समयसार तो समयसार है! इस संसार में दूसरा सब असार है। अहो! समयसार भगवान! तेरी बलिहारी है। ऐसे आत्मा के अद्भुत वैभव की बात विदेह में सीमन्धर परमात्मा के पास जाकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव लाये और भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को इस समयसार द्वारा प्रदान कर निहाल किया। समयसार में केवली और श्रुतकेवली भगवन्तों की वाणी है, इसकी एक-एक गाथा में ज्ञान का महासमुद्र भरा है, आनन्दमय परमतत्त्व को वह प्रसिद्ध करता है। स्वानुभूति द्वारा ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का अनुभव करनेवाला जीव स्वयं समयसार है।

जय समयसार..... जय कुन्दकुन्ददेव!! ●

गुरु वचन से निज आत्मपद को,
देखते मुझ आत्म में,
अहा! सीमन्धरनाथ का,
साक्षात्कार इस भरत में।

www.vitragvani.com

करना सो जीना

✯ आप सम्यग्दर्शन करने का कहते हो, परन्तु करना, सो तो मरना है ?

अरे भाई ! ज्ञानादि का करना, उसे मरना किसने कहा ? ज्ञानादि निजभाव करना, वह तो जीव का सच्चा जीवन है और वही जीव का कार्य है। करना, सो मरना – यह बात तो रागादि विकार के लिये है; वह कहीं ज्ञान के लिये नहीं। भेदज्ञान करना और सम्यक्त्वादि परिणमन करना–वह कहीं मरना नहीं; वह तो सच्चा जीवन है। विकल्प बिना अपनी निर्मलपर्याय को सदा किया करे—ऐसा कर्तृत्व तो आत्मा का स्वभाव है।

राग का करना, सो मरना है; ज्ञान करना, सो जीना है।

भेदज्ञान और वीतरागता करना, वह ज्ञानी का सच्चा जीवन है।

✯ अगाध शान्ति से भरपूर ज्ञानी का मार्ग ✯

भेदज्ञान के साथ चैतन्य शान्ति की कोई अगाध अनुभूति होती है। अहा ! आत्मा शान्ति के बर्फ के बीच बैठा, वहाँ चैतन्य की अनुभूति के आनन्द की क्या बात !

हे ज्ञानी ! तेरी बात दुनिया को न जँचे तो तू निरुत्साहित मत होना। दुनिया को भले न जँचे, पंच परमेष्ठी भगवन्त तो तेरे साथ है। अहो ! अन्तर का अतीन्द्रियमार्ग ! उसे दुनिया के साथ मेल कहाँ से खाये ? दुनिया तो बाह्य इन्द्रियज्ञान से देखनेवाली है, उसे अन्तर की वस्तु कहाँ से दिखे ? अन्तर्मुख हुए ज्ञानियों के मार्ग के साथ मेरे मार्ग का मेल है... उस मार्ग को अतीन्द्रियज्ञानवन्त ज्ञानी ही देखते हैं। आत्मा की अगाध शान्ति से भरपूर इस मार्ग में पंच परमेष्ठी भगवन्त मेरे साथीदार हैं। पंच परमेष्ठी के प्रसाद से ऐसा मार्ग जगत में जयवन्त वर्तता है।●

www.vitragvani.com

अनुभवरस-घोलन
(चैतन्यरसभरपूर तत्त्वचर्चा)

प्रश्न : आप अनुभव की बात करते हो, वह हमें बहुत ही रुचती है परन्तु ऐसा अनुभव कैसे करना ?

उत्तर : विकल्प से ज्ञान को भिन्न पहचानने का अभ्यास करना; ज्ञान की महानता है, ज्ञान अनन्त चैतन्यभावों से भरपूर है और राग / विकल्प तो चैतन्य से शून्य है—ऐसे भेदज्ञान करने से अनुभव होता है।

प्रश्न : छठवें गुणस्थान में महाव्रत के विकल्प हैं, वे कैसे हैं ?

उत्तर : छठवें गुणस्थान के शुभविकल्प को भी प्रमाद कहा है तो वह शुभविकल्प, ज्ञान की जाति कैसे होगा ? अग्नि का कण भले छोटा हो परन्तु वह कहीं बर्फ की जाति तो नहीं कहलायेगी न ? इसी प्रकार कषाय अंश भले शुभ हो परन्तु वह कहीं अकषाय / शान्ति की जाति तो नहीं कहलायेगी न ? विकल्प और ज्ञान की जाति ही अलग है। ऐसा भिन्नपना निर्णय करना, वह ज्ञानस्वभाव के अनुभव का कारण है।

प्रश्न : राग स्वयं दुःख है या उसमें एकत्वबुद्धि, वह दुःख है ?

उत्तर : राग स्वयं दुःख है; इसलिए उसमें एकत्वबुद्धि, वह दुःख ही है। दुःख के भाव में जिसे एकत्व भासित होता है (अर्थात् उसमें अपनत्व भासित होता है), वह दुःख से कैसे छूटे ?

—और उसके सामने राग से भिन्न आनन्दस्वभावी आत्मा स्वयं सुखरूप है; इसलिए उसमें एकत्वपरिणति भी सुख है।

www.vitragvani.com

प्रश्न : आत्मा, पर को करता नहीं, वैसे अपनी पर्याय को भी नहीं करता - यह सही है ?

उत्तर : नहीं; ऐसा नहीं है। आत्मा स्वयं कर्ता होकर अपनी सम्यक्त्वादि परिणति को करता है, ऐसा उसका कर्तास्वभाव है। अनुभव में विकल्परहित ऐसी निर्मलपर्याय हो जाती है, उसका कर्ता आत्मा है। हाँ, उस अनुभव के काल में 'मैं निर्मलपर्याय को करूँ'—ऐसा विकल्प नहीं है, परन्तु स्वयं परिणमित होकर निर्मल -पर्यायरूप होता है। उस निर्मलपर्याय के कर्तारूप से विकल्परहित वह आत्मा परिणमित होता है। विकल्प बिना भी अपनी शुद्धपर्याय के कर्ता-कर्म-करण इत्यादि छह कारकरूप परिणमित होने का जीव का स्वभाव है; वह परिणमन जीव का स्वयं का है। जैसे आत्मा, पर को नहीं करता और विकल्प को नहीं करता, इसी प्रकार आत्मा अपनी ज्ञानादि पर्याय को भी न करे-ऐसा कोई नहीं कहते परन्तु 'मैं कर्ता और पर्याय को करूँ'—ऐसे भेद के विकल्प को करना, आत्मा के स्वभाव में नहीं है—ऐसा समझना।

प्रश्न : विकल्प से हटकर परिणति अन्तर में क्यों नहीं ढलती ?

उत्तर : क्योंकि अन्तर के चैतन्यतत्त्व की वास्तविक महिमा नहीं आती और राग की महिमा नहीं छूटती। अन्तर का आनन्द तत्त्व जो कि राग से पार है, उसकी गम्भीर महिमा यदि भलीभाँति जाने तो उसमें ज्ञान झुके बिना नहीं रहे। अचिन्त्य अद्भुत स्वतत्त्व का ज्ञान होने पर ही परिणाम शीघ्रता से उसमें ढल जाते हैं, क्षण-भेद नहीं। जहाँ ज्ञान अन्तर में झुका, वहाँ दूसरे अनन्त गुण भी अपने-अपने निर्मलभावरूप से खिल उठे और अनन्त गुण के

www.vitragvani.com

वीतरागी चैतन्यरस का अचिन्त्य स्वाद आया-इसका नाम सम्यग्दर्शन।

प्रश्न : सम्यक्त्व की तैयारीवाले जीव को सम्यक्त्व की पूर्व भूमिका में कैसे विचार होते हैं ?

उत्तर : प्रथम तो उस जीव ने स्वयं के ज्ञानस्वभाव की महिमा लक्ष्य में ली है, उसे उस स्वभाव की ओर ढलते विचार होते हैं। कोई अमुक ही प्रकार का विचार या विकल्प हो-ऐसा नियम नहीं है परन्तु समुच्चयरूप से विकल्प का रस टूटता है और चैतन्य का रस घुटता है, अर्थात् परिणति, स्वभाव की ओर उल्लसित हो जाये ऐसे ही परिणाम होते हैं। किसी को मैं ज्ञायक हूँ-ऐसे विचार होते हैं; किसी को सिद्ध जैसा आत्मस्वरूप है-ऐसे विचार होते हैं; किसी को आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के विचार होते हैं; किसी को ज्ञान और राग की भिन्नता के विचार होते हैं; किसी को आत्मा की अनन्त शक्ति के विचार होते हैं—ऐसे किसी भी पहलू से अपने स्वभाव की ओर झुकने के विचार होते हैं।

—फिर जब अन्तर की कोई अद्भुत उग्र धारा से स्वभाव -सन्मुख जाता है, तब विकल्प शान्त होने लगते हैं और चैतन्यरस घुलता जाता है, उस समय विशुद्धता के अति सूक्ष्म परिणामों की धारा द्वारा अन्तर में 'तीन करण' हो जाते हैं, उन तीन करण के काल में जीव के परिणाम, स्वरूप के चिन्तवन में अधिक से अधिक मग्न होते जाते हैं और फिर वह शीघ्रता से दूसरे ही क्षण निर्विकल्प-विज्ञानघन होकर परम शान्त अनुभूति द्वारा जीव स्वयं अपने को साक्षात् अनुभव करता है - यह सम्यक्त्व की विधि है।

www.vitragvani.com

प्रश्न : हे गुरुदेव ! सम्यग्दर्शन की विधि तो आपने समझायी, परन्तु यह समझने के पश्चात् परिणति की गुलाँट कैसे मारना ?

उत्तर : यथार्थ विधि समझ में आये, वहाँ परिणति गुलाँट खाये बिना नहीं रहती। विकल्पजाति और स्वभावजाति, इन दोनों को भिन्न जानते ही परिणति, विभाव में से पृथक् पड़कर स्वभाव में तन्मय होती है। विधि को सम्यक्रूप से जानने का काल और परिणति को गुलाँट खाने का काल-दोनों एक ही हैं। विधि जाने, फिर उसे सिखाना नहीं पड़ता कि तू ऐसा कर। जो विधि जानी है, उस विधि से ज्ञान अन्तर में ढलता है। सम्यक्त्व की विधि को जाननेवाला ज्ञान स्वयं कोई राग में तन्मय नहीं है; स्वभाव में तन्मय है और ऐसा ही ज्ञान, सच्ची विधि को जानता है। राग में तन्मय वर्तता ज्ञान, सम्यक्त्व की सच्ची विधि को नहीं जानता।

पहले आत्मा के स्वभाव से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विचार होते हैं, उनके द्वारा स्वभाव-महिमा को पुष्ट करता जाय — परन्तु उस समय उसे स्वभाव को पकड़ने के लिये ज्ञान की महत्ता है, वह ज्ञान, विकल्प से आगे हटकर स्वभाव की ओर अन्दर ढलता है। वहाँ कोई 'मैं शुद्ध' इत्यादि जो विकल्प हैं, वे अनुभव की ओर झुकने का कारण नहीं है, ज्ञान ही विकल्प से भिन्न होकर अनुभव करता है।

❋ चैतन्य की स्फुरणा होते ही परभाव छूट जाते हैं ❋

प्रश्न : असंख्यात प्रकार के परभावों से छूटने के लिये क्या करना ? एक परभाव से बचते हैं, वहाँ दूसरा परभाव घुस जाता है, तो क्या करना ?

उत्तर : स्वभाव में प्रवेश करने पर समस्त परभाव एकसाथ

www.vitragvani.com

छूट जाते हैं। स्वभाव के दरबार में परभाव का प्रवेश नहीं है। स्वभाव में आये बिना, परभाव के लक्ष्य से परभावों से बचा नहीं जा सकता; इसलिए एक साथ समस्त परभावों से बचने का उपाय यह है कि वहाँ से उपयोग को पराङ्मुख करके स्वभाव में उपयोग लगाना। यह आत्मा ऐसा आनन्दमयी चैतन्य प्रकाश का पुंज है, कि इसका स्फुरण होते ही (अर्थात् उपयोग इसमें झुकते ही) समस्त परभावों का इन्द्रजाल (विकल्प तरंगें) तत्क्षण भाग जाता है और आनन्द होता है।

प्रश्न : सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, तब जो आनन्द अनुभव में आया, उसका भाषा में वर्णन आ सकता है क्या?

उत्तर : उस वेदन का वाणी में पूरा वर्णन नहीं आता; अमुक वर्णन आवे, उससे सामनेवाला जीव यदि वैसे लक्ष्यवाला हो तो सच्ची स्थिति समझ जाता है।

❋ सम्यग्दर्शन की पहिचान ❋

प्रश्न : कोई जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ है, उसे पहिचानने का लक्षण क्या? कि जिससे दूसरे मनुष्य सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के बीच का अन्तर समझ सकें?

उत्तर : अकेले बाहर की क्रिया के चिह्न से सम्यग्दृष्टि को नहीं पहिचाना जा सकता। जिसे स्वयं को सम्यक्त्व का स्वरूप लक्ष्यगत हुआ हो, वही सम्यग्दृष्टि को वास्तव में पहिचान सकता है। सम्यग्दर्शन स्वयं अतीन्द्रिय वस्तु है, अकेले इन्द्रियगम्य चिह्नों द्वारा उसे नहीं पहिचाना जा सकता। सम्यग्दृष्टि की सच्ची पहिचान तब होती है कि जब अपने में उस प्रकार का भाव प्रगट करे।

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि की पहिचान का भाव भी अपूर्व है। जैसे आत्मा अलिंगग्रहण, अर्थात् अतीन्द्रियग्राह्य है; वैसे उसकी सम्यक्त्व आदि शुद्धदशा भी वास्तव में अलिंगग्रहण अर्थात् अतीन्द्रियग्राह्य है; उसे अकेले इन्द्रियगम्य अनुमान से नहीं पहिचाना जा सकता।

❋ तैयारी और प्राप्ति ❋

प्रश्न : सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की तैयारीवाले जीव की दशा कैसी होती है ? और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद उसकी दशा कैसी होती है ?

उत्तर : एक आत्मानुभव की ही उमंग, उसी का रंग, बारम्बार सतत् उसी का घोलन, निजस्वरूप की अतिशय महत्ता, उसकी -एक की ही प्रियता और उसके अतिरिक्त समस्त परभावों की अत्यन्त तुच्छता समझकर उनमें अत्यन्त नीरसता, अन्य सबसे परिणाम हटाकर एक आत्मस्वरूप में ही परिणाम को लगाने का गहरा उग्र प्रयत्न... स्वरूप की अप्राप्ति का प्रथम तीव्र अकुलाहट, उसकी प्राप्ति के लिये तीव्र जिज्ञासारूप धगश, फिर निकट में ही स्वरूप की प्राप्ति के भनकार का परम उल्लास-इस प्रकार बहुत प्रकार से अनेक बार (गुरुदेव) सम्यक्त्व की भूमिका वर्णन करते हैं।

स्वरूप प्राप्त हुआ, वह अपूर्वता हुई, वह तो अपार गम्भीररूप से अन्दर ही अन्दर समाहित होता है। उस समकिती की परिणति में कोई परम उदासीनता, अद्भुत शान्ति, जगत से अलिप्तता, आत्मा के अनुभव के आनन्द की कोई अचिन्त्य खुमारी-इत्यादि अनन्त भावों से बहुत-बहुत गम्भीरता तो स्वयं को जब स्वानुभव हो तब पता पड़े। ●

www.vitragvani.com

सम्यक्त्व-प्रेरक १०८ सुगम प्रश्नोत्तर

१. प्रश्न : मोक्षशास्त्र का पहला ही सूत्र क्या है ?

उत्तर : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।

२. प्रश्न : समयसार में सम्यग्दर्शन किसे कहा है ?

उत्तर : भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन कहा है।

(जीवादि नव तत्त्वों को भूतार्थनय से जानना, वह सम्यग्दर्शन है।)

३- नव तत्त्व को जाने परन्तु शुद्धात्मा को न पहचाने तो ?

- तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता; उसका नव तत्त्व का ज्ञान भी सच्चा नहीं होता, नव तत्त्वों को भूतार्थनय से जाने तो अवश्य सम्यग्दर्शन होता है।

४- वीतराग भगवन्त किस मार्ग से मोक्ष में चले ?

- अन्तर्मुखी शुद्धरत्नत्रय के मार्ग से वे मोक्ष में गये।

५- जीव को बहिरात्मदशा में क्या था ?

- बहिरात्मदशा में वह एकान्त दुःखी था, क्योंकि उसे देह से भिन्न आत्मा का ज्ञान नहीं था।

६- अब अन्तरात्मा होने पर क्या हुआ ?

- उसे देहादि से भिन्न आत्मस्वभाव का ज्ञान होने से आत्मा का सच्चा सुख अनुभव में आया।

७- हम परमात्मा को पहिचान सकते हैं ?

www.vitragvani.com

– हाँ; अन्तरात्मा होकर पहिचान सकते हैं।

८– अन्तरात्मा का लक्षण क्या ?

– स्व-पर के भेदज्ञानपूर्वक ज्ञानचेतना की अनुभूति, वह उसका लक्षण है।

९– ज्ञानचेतनावन्त अन्तरात्मा को वास्तव में कौन पहिचान सकता है ?

– अन्तरात्मा होने का सच्चा जिज्ञासु हो वह; तथा जो स्वयं अन्तरात्मा हो वह।

१०– अकेले अनुमान द्वारा ज्ञानी को पहिचाना जा सकता है ?

– नहीं, वास्तव में तो स्वसंवेदन-प्रत्यक्षपूर्वक ही पहिचाना जा सकता है।

११– आत्मा को अनुभव करनेवाले अन्तरात्मा कैसे हैं ?

– वे परमात्मा के पड़ोसी हैं, अर्थात् वे परमात्मपद के पथिक हैं।

१२– राग होने पर भी अन्तरात्मा क्या करता है ?

– अपनी ज्ञानचेतना को राग से भिन्न अनुभव करता है।

१३– अन्तरात्मा की पहिचान करने से क्या होता है ?

– जीव-अजीव का सच्चा भेदज्ञान हो जाता है।

१४– सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव हो तब ?

– तब भी वह अन्तरात्मा है।

१५– मिथ्यादृष्टि, शुभभाव करता हो तब ?

– तब भी वह बहिरात्मा है।

www.vitragvani.com

१६- राग के समय अन्तरात्मा की चेतना कैसी है ?

- तब भी उसकी चेतना, राग से अलिप्त ही है।

१७- अज्ञानी को व्यवहाररत्नत्रय होता है ?

- नहीं, अज्ञानी को तो मात्र व्यवहाराभास ही है; इसलिए जघन्य अन्तरात्मा से भी वह हल्का है; उसका स्थान तो संसारतत्त्व में ही है।

१८- सम्यग्दृष्टि की परिणति कैसी है ?

- कोई अद्भुत आश्चर्यकारी है; ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न है।

१९- अविरत सम्यग्दृष्टि को कितनी कर्म प्रकृति नहीं बँधती है ?

- उसे कुल ४३ कर्मप्रकृति बँधती ही नहीं। (४१+२)

२०- छोटे से छोटे सम्यग्दृष्टि की आत्मश्रद्धा कैसी है ?

- सिद्ध भगवान जैसी।

२१- कुन्दकुन्ददेव ने मोक्षप्राभृत में सम्यग्दृष्टि को कैसा कहा है ?

- वह धन्य, कृतकृत्य है, शूरवीर है, पण्डित है।

२२- सर्वज्ञ का वास्तविक स्वीकार कौन कर सकता है ?

- ज्ञानदृष्टिवन्त सम्यग्दृष्टि ही सर्वज्ञ का वास्तविक स्वीकार करता है।

२३- सर्वज्ञ के स्वीकार में क्या-क्या आता है ?

- अहा ! सर्वज्ञ के स्वीकार में तो ज्ञानस्वभाव का स्वीकार है;

www.vitragvani.com

वह धर्म का मूल पाया है; उसमें तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है; राग और ज्ञान की भिन्नता का अनुभव है, वीतरागी आनन्द है।

२४- सर्वज्ञता कैसी है ?

- अहो! उसकी क्या बात! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानरूप है, महा आनन्दरूप है, राग-द्वेषरहित है, विकल्पातीत उसकी महिमा है।

२५- सत्य समझने की शुरुआत किस प्रकार करना ?

- वस्तु का अपना स्वरूप लक्ष्य में लेकर।

२६- हिले-चले-बोले वह जीव- यह सत्य ?

- नहीं; जाने वह जीव; ज्ञान न हो, वह अजीव।

२७- पुण्य-पाप के (शुभाशुभ) भाव कैसे हैं ?

- जीव को दु:ख के कारण हैं, इसलिए छोड़नेयोग्य हैं।

२८- मेंढ़क-सम्यग्दृष्टि हो, उसे तत्त्वश्रद्धा होती है ?

- हाँ, उसे जिनमार्गानुसार भलीभाँति तत्त्वश्रद्धा होती है।

२९- तत्त्वों को जानकर क्या करना ?

- हितरूप तत्त्वों को ग्रहण करना और दु:खरूप तत्त्वों को छोड़ना।

३०- परमेश्वर कैसे हैं ?

- वे जगत को जाननेवाले हैं, किन्तु जगत के कर्ता नहीं।

३१- जगत के पदार्थ कैसे हैं ?

- स्वयं सत् हैं। दूसरा कोई इनका कर्ता नहीं।

३२- आत्मा के अनुभव-बिना सर्वज्ञ को पहिचाना जा सकता है ?

www.vitragvani.com

– नहीं।

३३– शरीर का छेदन–भेदन हो, तब जीव शान्ति रख सकता है?

– हाँ, जीव को शरीर से भिन्न जाने–अनुभव करे तो जीव शान्ति रख सकता है।

३४– जीव की भूल कैसे छूटे?

– अपनी भूल को तथा अपने गुण को–(स्वभाव को) जाने तब।

३५– आत्मा का स्वभाव दु:ख का कारण होगा?

– नहीं, आत्मा का स्वभाव सुख का ही कारण है।

३६– राग या पुण्य कभी सुख का कारण होगा?

– नहीं, राग और पुण्य तो सदा ही दु:ख का ही कारण है।

३७– ऐसा जाननेवाला जीव क्या करता है?

– पुण्य–पाप से भिन्न पड़कर आत्मा की ओर ढलता है।

३८– पुण्य से भविष्य में सुख मिलेगा–यह सत्य है?

– नहीं; अनुकूल संयोग मिलें, वे कहीं सच्चा सुख नहीं है।

३९– अज्ञानी किसका आदर करते हैं?

– पुण्य का (तथा पुण्य के फल का)

४०– ज्ञानी किसका आदर करते हैं?

– पुण्य–पापरहित ज्ञानचेतना का।

४१– आत्मा को एक ओर रखकर धर्म हो सकता है?

– कभी नहीं होता; आत्मा को पहिचानकर ही धर्म होता है।

www.vitragvani.com

४२- सम्यग्दर्शन के निमित्त कौन है ?

- सच्चे देव-गुरु-धर्म ही सम्यग्दर्शन के निमित्त हैं।

४३- वीतरागी देव कौन हैं ?

- अरिहन्त और सिद्ध।

४४- निर्ग्रन्थ गुरु कौन ?

- आचार्य, उपाध्याय, साधु।

४५- सच्चा धर्म कौन सा ?

- सम्यक्त्वादि वीतरागभाव (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र)।

४६- वीतरागमार्ग में अहिंसा किसे कहते हैं ?

- रागादिभावों रहित शुद्धभाव, वह अहिंसा है।

४७- हिंसा किसे कहते हैं ?

- जितने रागादिभाव हैं, उतनी चैतन्य की हिंसा है, क्योंकि रागादिभावों से जीव की शान्ति-सुख का घात होता है।

४८- हिंसा-अहिंसा का ऐसा स्वरूप कहाँ है ?

- सर्वज्ञदेव के मत में ही है; अन्यत्र कहीं नहीं।

४९- ऐसे अहिंसाधर्म को कौन पहिचानता है ?

- सम्यग्दृष्टि ही पहिचानता है।

५०- जीव किस विद्या को पूर्व में कभी नहीं पढ़ा ?

- वीतराग-विज्ञानरूप सच्ची चैतन्य-विद्या नहीं पढ़ा।

५१- ज्ञान, आत्मा से कभी भिन्न क्यों नहीं पड़ता ?

- क्योंकि ज्ञान, आत्मा का स्वरूप ही है।

www.vitragvani.com

५२- कर्म और शरीर कैसे हैं ?

- आत्मा से भिन्न जाति के हैं, वे आत्मा का स्वरूप नहीं; वे पुद्गल के परिणाम हैं।

५३- पुण्य-पापवाला आत्मा, वह वास्तविक आत्मा है ?

- नहीं; वास्तविक आत्मा, चेतनारूप और आनन्दरूप है।

५४- मुमुक्षु जीव को क्या साध्य है ?

- मुमुक्षु जीव को मोक्षसुख के अतिरिक्त दूसरा कोई साध्य नहीं है।

५५- सच्चा आनन्द (मोक्ष का आनन्द) कैसा है ?

- स्वयंभू है, आत्मा ही उसरूप होता है।

५६- साधकदशा का समय कितना ?

- असंख्य समय।

५७- साध्यरूप मोक्षसुख का काल कितना ?

- अनन्त।

५८- सिद्धदशा-मोक्षदशा कैसी है ?

- महा आनन्दरूप, सम्यक्त्वादि सर्व गुणसहित और द्रव्य-कर्म-भावकर्म तथा नोकर्म रहित।

५९- चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन है, वह रागवाला है ?

- नहीं; वहाँ राग होने पर भी सम्यग्दर्शन तो रागरहित ही है।

६०- सम्यक्त्व के साथ का राग कैसा है ?

- वह बन्ध का ही कारण है; सम्यक्त्व, वह मोक्ष का कारण है।

www.vitragvani.com

६१- चैतन्यतत्त्व कैसा है ?

- अहा! उसकी अद्‌भुत महिमा है, उसमें अनन्त स्वभाव है।

६२- सम्यग्दर्शन किस प्रकार प्रगट होता है ?

- आनन्द के अपूर्व वेदनसहित ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

६३- सम्यग्दर्शन के साथ धर्मी को क्या होता है ?

- नि:शंकतादि आठ गुण होते हैं तथा चैतन्य के अनन्त गुणों का रस सम्यग्दर्शन के साथ वेदन में आता है।

६४- जिसने चैतन्यसुख नहीं चखा, उसे क्या होता है ?

- उसे गहराई में राग की-पुण्य की-भोग की आकांक्षा होती है।

६५- सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ वर्तता है ?

- चेतना में ही तन्मय वर्तता है, राग में नहीं वर्तता।

६६- धर्म से क्या मिलता है ?

- धर्म से आत्मा का वीतरागी सुख मिलता है।

६७- पुण्यरूपी धर्म कैसा है ?

- वह संसार-भोग का हेतु है; वह मोक्ष का हेतु नहीं।

६८- उस पुण्य को कौन चाहता है ?

- अज्ञानी।

६९- धर्मी किसे चाहता है ?

-वह अपने चैतन्य-चिन्तामणि के अतिरिक्त किसी को नहीं चाहता।

७०- स्वर्ग का देव आवे तो ?

www.vitragvani.com

– वह कोई चमत्कार नहीं। वास्तविक चमत्कार तो चैतन्यदेव का है।

७१– वीतरागता का साधक धर्मी किसे नमता है ?

– वीतरागी देव के अतिरिक्त किसी देव को वह नहीं नमता।

७२– अरिहन्त के शरीर में रोग या अशुचि होती है ?

– नहीं; अरिहन्त को जैसे राग नहीं है, वैसे रोग भी नहीं है।

७३– साधक के शरीर में रोगादि होते हैं ?

– हाँ, परन्तु अन्दर आत्मा सम्यक्त्वादि से शोभित हो रहा है।

७४– मुनियों का शृंगार क्या ?

– रत्नत्रय उनका शृंगार है।

७५– ऐसे मुनियों को देखने से अपने को क्या होता है ?

– अहो! बहुमान से उनके चरणों में सिर नम्रीभूत हो जाता है, और मोक्षमार्ग के प्रति उल्लास जागृत होता है।

७६– धर्मी अकेला हो तो ?

– तो भी उकताता नहीं है; सत्यमार्ग में वह निःशंक है।

७७– जैसे माता को पुत्र प्रिय है, वैसे धर्मी को क्या प्रिय है ?

– धर्मी को प्रिय साधर्मी; धर्मी को प्रिय रत्नत्रय।

७८– धर्म की सच्ची प्रभावना कौन कर सकता है ?

– जिसने स्वयं धर्म की आराधना की हो वह।

७९– धर्मी को चक्रवर्ती पद का भी मद क्यों नहीं है ?

– क्योंकि चैतन्य तेज के समक्ष चक्रवर्ती पद फीका लगता है।

www.vitragvani.com

८०- मनुष्य का उत्तम अवतार पाकर क्या करना ?

- चैतन्य की आराधना द्वारा भव के अन्त का उपाय करना।

८१- शरीर के सुन्दर रूप का मद धर्मी को क्यों नहीं है ?

- क्योंकि सबसे सुन्दर ऐसा चैतन्यरूप उसने देखा है।

८२- आत्मा किससे शोभित होता है ?

- सम्यग्दर्शनरूप आभूषण से।

८३- सर्वाधिक उत्कृष्ट पढ़ाई क्या ?

- जिस ज्ञान द्वारा आत्मा की अनुभूति हो वह।

८४- सच्चे श्रुतज्ञान का फल क्या ?

- आनन्द और वीतरागता।

८५- भरत और बाहुबली लड़े, तब क्या हुआ ?

- उस समय भी दोनों की ज्ञानचेतना भिन्न ही थी।

८६- सम्यग्दर्शन तो किसी भी धर्म में होता है न ?

- नहीं; जैनमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र सम्यग्दर्शन नहीं होता।

८७- सम्यग्दर्शन होने पर जीव को क्या हुआ ?

- वह पंच परमेष्ठी की जाति में मिला।

८८- सम्यग्दर्शन के बिना शुभकरणी भी कैसी है ?

- वह भी जीव को दु:खकारी है।

८९- जैनमार्ग कैसा है ?

- वह भगवान होने का मार्ग है।

www.vitragvani.com

९०- तीन काल और तीन लोक में जीव को श्रेय क्या है ?

- सम्यक्त्व के समान कोई श्रेय नहीं है।

९१- चैतन्य के जितने धर्म हैं, उन सबका मूल क्या है ?

- सर्व धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है — **दंसण मूलो धम्मो।**

९२- जीव को शीघ्र क्या करनेयोग्य है ?

- हे जीव! तू सम्यक्त्व को शीघ्र धारण कर... व्यर्थ काल न गँवा। सम्यक्त्व के लाभ का यह उत्तम अवसर है।

९३- राग के रास्ते से मोक्ष में जाया जाता है ?

-नहीं, राग तो संसार-मार्ग है।

९४- मोक्ष का मार्ग क्या है ?

- सम्यक्त्वसहित स्वानुभूति और वीतरागता।

९५- सम्यक्त्व को और शुभराग को कोई सम्बन्ध है ?

- नहीं; दोनों भाव अत्यन्त भिन्न हैं।

९६- सम्यक्त्व होने पर क्या हुआ ?

- ज्ञान की धारा राग से छूटकर मोक्ष की ओर चली।

९७- संसार में भ्रमता हुआ जीव पूर्व में क्या नहीं पाया ?

- एक तो जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व।

९८- भगवान के पास तो जीव अनन्त बार गया है न ?

- हाँ, परन्तु उसने भगवान को पहिचाना नहीं।

९९- भगवान को पहिचाने तो क्या हो ?

- शुद्ध आत्मा की पहिचान और सम्यग्दर्शन हो ही।

www.vitragvani.com

१००- अनन्त जीव, मोक्ष को प्राप्त हुए-वे सब क्या करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ?

- सम्यग्दर्शन से ही अनन्त जीव, मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

१०१- सम्यग्दर्शन के बिना कोई मोक्ष को प्राप्त हुआ है ?

- नहीं।

१०२- सम्यक्त्व की सरस महिमा सुनकर क्या करना ?

- हे जीवों! तुम जागो... सावधान होओ... और स्वानुभव करो। (सम्यक्त्व प्राप्ति का यथार्थ उपाय करना)।

१०३- ऋषभदेव के जीव को सम्यक्त्व प्राप्त कराने के लिये मुनियों ने क्या कहा ?

- हे आर्य! यह सम्यक्त्व की प्राप्ति का अवसर है; इसलिए तू आज ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर।

१०४- यह सुनकर ऋषभदेव के जीव ने क्या निर्णय किया ?

- मुनियों की उपस्थिति में उसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट किया।

१०५- इस उदाहरण से क्या निर्णय करना ?

- सम्यक्त्व ग्रहण करो... 'काल वृथा मत खोओ'। (जो सम्यक्त्व का सच्चा पुरुषार्थ करे, उसे अवश्य उसकी प्राप्ति होती ही है)।

१०६- देवों के अमृत से भी उत्कृष्ट रस कौन-सा है ?

- सम्यक्त्व का अतीन्द्रिय आत्मरस, अमृत से भी उत्कृष्ट है।

१०७- सम्यग्दर्शन होने पर क्या हुआ ?

www.vitragvani.com

– अहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में मोक्ष का सिक्का लग गया। आनन्दरस की अपूर्व धारा उल्लसित हुई।

१०८– इस काल में सम्यग्दर्शन पाया जा सकता है?

– हाँ; अनेक जीव पाये हैं और पा सकते हैं।

– इसलिए हे जीव!

तू आज ही सम्यक्त्व को धारण कर!

अब आप पढ़ोगे सम्यग्दर्शन सम्बन्धी लेखमाला

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहले मुमुक्षु का जीवन कैसी पात्रतावाला होता है! और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद का जीवन कैसा अद्भुत होता है! इस सम्बन्धी निबन्ध योजना में सौ लेख आये थे। उसमें से आठ लेख पसन्द करके सम्पादनसहित यहाँ दिये गये हैं। वे सम्यक्त्व के लिए अभ्यास में जिज्ञासुओं को अत्यन्त उपयोगी होंगे।

www.vitragvani.com

सम्यक्त्व के पिपासु की एक ही धुन

सम्यक्त्व के शान्तरस का बारम्बार घोलन

[१]

उसे बस एक आत्मा का रस पीने की ही धगश लगी है... अहा! ज्ञानी जिसकी इतनी महिमा करते हैं, वह आत्मतत्त्व कैसा है?-ऐसे बारम्बार आत्मा का मंथन करके वह गहराई में उतरता जाता है... और अन्त में कोई परमशान्ति के वेदनसहित वह अपने स्वरूप को जान लेता है-श्रद्धा कर लेता है। अहा! आनन्दधाम मेरे इस आत्मा में कोई आकुलता नहीं। निर्विकल्प होने पर आनन्दरस का झरना बहने लगता है। अहा, धन्य वह दशा! धन्य वह अनुभूति!

आत्मसन्मुख जीव को निर्विकल्पदशा न हुई हो, तब वह अपनी चैतन्यवस्तु के गहरे-गहरे चिन्तन द्वारा निर्विकल्पदशा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है; एक चिदानन्द, विज्ञानघनस्वभाव का घोलन, वह उसका ध्येय रहता है।

प्रथम, ज्ञायकस्वभाव के लक्ष्य से विचारधारा में वह जीव स्वरूप-ध्यान में स्थित रहने का उद्यमी होता है। वह नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को लक्ष्य में लेकर स्व-पर का भेदविज्ञान करता है।

वह अपने को विज्ञानघनस्वभावरूप लक्ष्य में लेकर, नोकर्म, अर्थात् जड़ शरीर, बाह्य के संयोग—स्त्री-पुरुष, सम्पत्ति इत्यादि -जिसे अपना मानता था, उनमें से दृष्टि उठा लेता है। उसे संयोग तुच्छ लगते हैं और 'वह मैं नहीं'—ऐसा उसे भासित होने लगता

www.vitragvani.com

है; उनसे भिन्न मैं कोई अलग चीज़ हूँ और सच्ची शान्ति मुझमें ही है—ऐसा लगा करता है; उसे आत्मा की ही धुन लगती है।

द्रव्यकर्म, जड़ हैं; उन ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय आदि आठ कर्मों को वह अपना नहीं मानता, उसका लक्ष्य वहाँ से हट जाता है और चेतनारूप आत्मा का लक्ष्य करता है। कर्म जो जड़रूप हैं, वे मेरे कैसे हो सकते हैं ? मैं तो चेतन हूँ—ऐसा वह निर्णय करता है।

अन्त में भावकर्म—पुण्य-पाप आदि के भाव, जिन्हें जीव ने अज्ञान से अपना (स्वाभाविक) माना था, उन्हें भी चैतन्य से भिन्न समझता है और विकाररहित आत्मतत्त्व को पकड़ने की उसे धुन लगती है। विकल्प होने पर भी, उसका निषेध करके, ज्ञान में चैतन्यज्ञायक आत्मा को लक्ष्य में लेकर, उसके अनुभव का उद्यम करता है... मैं विज्ञानघनस्वरूप आत्मा, विकल्परहित कैसा हूँ—इस ओर ज्ञान को सन्मुख करने के लिये उद्यम करता है।

मैं तो चैतन्य-चमत्काररूप हूँ, अर्थात् स्व-पर को जाननेवाला हूँ; मैं मुझे स्वयं को जानते हुए पर को जान लूँ—ऐसा चमत्कारिक हूँ-इस प्रकार अन्दर ही अन्दर उतरता जाता है और विकल्परहित आत्मा के ही विचार में लीन रहता है। जैसे-जैसे गहरा उतरता जाता है, वैसे-वैसे चैतन्य की शान्ति का उसे ख्याल होता जाता है और विश्वास आता है कि शान्ति का कोई अगाध समुद्र मुझमें ही भरा है।

पहले परवस्तु में और राग में अहंबुद्धि करता था; वह अब विचार द्वारा अपने चैतन्यपुंज में अहंबुद्धि करता है। मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, आनन्द की खान हूँ, चैतन्य का नूर हूँ-ऐसे

www.vitragvani.com

निर्मल विचार आया करते हैं। जड़ का या अचेतन विकल्पों का मेरी शुद्ध अनुभूति में प्रवेश नहीं है, वे तो चैतन्य की जाति से भिन्न हैं।

आत्मसन्मुख जीव को निर्विकल्पदशा होने से पूर्व, आत्मा की ऐसी धुन चढ़ती है कि चैतन्य की शान्ति के अतिरिक्त दूसरे किसी भाव में उसे चैन नहीं पड़ता। सूक्ष्म विकल्प भी उसे भाररूप लगा करते हैं और चेतना को उनसे भी भिन्न करके अन्दर ले जाना चाहता है; उसमें ही उसे सुख दिखता है। मुमुक्षु को विकल्प से थकान लगे और चैतन्य की कुछ शान्ति दिखायी दे, तब ही वह निर्विकल्प होकर अन्दर जाने का प्रयत्न करे न!

सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाला जीव पहले तो ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करता है। ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय, वह विकल्प द्वारा नहीं परन्तु ज्ञान द्वारा ही करता है। वह आत्मार्थ की सिद्धि में बाधक परिणामों को उग्ररूप से छोड़ता है। उसे बस! एक आत्मा का रस पीने की ही धगश लगी है। उसे आत्मस्वरूप कैसा है? यह समझने की ही लगन लगी है। उसे लगता है कि अहा! ज्ञानी जिसके इतने गुणगान करते हैं, वह आत्मद्रव्य कैसा है? वह बारम्बार अन्तर्मन्थन कर-करके अपने आत्मा सम्बन्धी निर्णय को पक्का करता है और चाहे जैसे संकट आयें तो भी उसका सत् का निर्णय अफर रहता है। उस आत्मार्थी का कार्य और ध्येय बस, आत्मार्थ को शोधना ही रहता है। वह आत्मा के कार्य से डिगता नहीं। वह अपनी समस्त शक्ति को, ज्ञान को, उत्साह को, अपने सर्वस्व को आत्मा में जोड़कर अवश्य आत्मार्थ को साधने में तत्पर होता है। वह सच्चे ज्ञानी को पहिचानने का प्रयत्न करता है; और

www.vitragvani.com

वे सच्चे ज्ञानी जो भेदज्ञान से कहते हैं, उनके जैसा भेदज्ञान लक्ष्य में लेकर उसका प्रयत्न करता है। वह उन सच्चे ज्ञानी से आत्मा के अनुभव का वर्णन अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सुनता है और उसमें से अपने प्रयोजनभूत ज्ञानस्वभाव का निर्णय करता है।

वह आत्मा का साधक जीव, जो सच्ची वस्तु बतावे और सत्स्वरूप आत्मा का निर्णय करावे-ऐसे ही देव-गुरु-शास्त्र को मानता है। सत् वस्तु का निर्णय न करावे—ऐसे कुदेव-कुगुरु -कुशास्त्र को आत्मार्थी नहीं मानता। इस प्रकार निर्णय करके वह अपने उपयोग को शुद्धस्वभाव की ओर झुकाता जाता है।

वह ऐसा मानता है कि मैं सबसे भिन्न एक त्रिकाल ज्ञानस्वभावमात्र ही हूँ, और वही मेरी चीज़ है; उसे ज्ञान के घोलन में यह भासित होने लगता है। 'मैं शुद्ध चिद्रूप हूँ'-ऐसी उसे धुन चढ़ती है; आत्मा के चिन्तन में उसे सहज ही आनन्द तरंग उठती है और रोमांच उल्लसित होता है। इस प्रकार अभी सविकल्पदशा होने पर भी, उसे स्वभाव की महिमा का लक्ष्य बढ़ता जाता है और वह जीव, शुद्ध आत्मा के लक्ष्य के जोर से आत्मा की ओर आगे ही आगे बढ़ता है। उसे अब एक ही ख्याल रहा करता है कि मैं ऐसा अद्भुत ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, मेरा ज्ञानतत्त्व विकल्परूप नहीं और ज्ञेयाश्रित मेरा ज्ञान नहीं; ज्ञानस्वरूप मैं स्वयं हूँ; इस प्रकार अपने परिणाम में ज्ञानस्वभाव को सर्व ओर से निर्णय करके, वह अन्य सबसे भेदज्ञान करता है और अन्दर ढलता है।

अन्दर ही अन्दर ज्ञानस्वभाव का घोलन करते-करते उसे जो शुद्धस्वभाव के रागमिश्रित विचार आते थे, वे भी छूट जाते हैं और

www.vitragvani.com

अपना स्वरूप केवल चिन्मात्र भासित होने लगता है... तब सर्व परिणाम उस स्वरूप में एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं; तब उसे दर्शन-ज्ञानादि के, अथवा प्रमाण-नय आदि के विकल्प विलय हो जाते हैं और अभेद-अखण्ड चैतन्यरसमय निजस्वरूप का लक्ष्य होता है... कोई परम शान्ति के वेदनसहित अपना स्वरूप उसे ज्ञात होता है और श्रद्धा में आता है। अहा.! आनन्दधाम मेरे इस आत्मा में किसी विकल्प की आकुलता नहीं। ऐसा साक्षात्कार होने पर शुद्ध परिणति, आनन्दकन्द ज्ञानस्वभाव में ही प्रविष्ट हो गयी है। ज्ञानस्वभाव में तन्मय परिणमित होता हुआ वह आत्मा समस्त विकल्पों से भिन्न पड़ जाता है, उसे आत्मा ही परमात्मरूप से दिखायी देता है; उसे ज्ञान और विकल्प की अत्यन्त भिन्नता भासित होती है; ज्ञान और राग का भेदज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करता है। वह निर्णय करनेवाला ज्ञान, अन्तर्मुख अतीन्द्रिय होकर भगवान आत्मा को विकल्प से भिन्न आनन्दस्वरूप प्रसिद्ध करता है। वही आत्मा का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

पहले जो चैतन्यस्वरूप-स्वभाव का निश्चय किया था, वही ज्ञानस्वभावी आत्मा में अनुभव के समय ऐसा व्याप्य-व्यापकरूप होकर प्रवर्तता है कि जहाँ ध्याता-ध्येय का भेद भी नहीं रहता; तब निर्विकल्प आनन्ददशा होती है। अहा...! धन्य है वह दशा! धन्य है वह अनुभूति! निर्विकल्पदशा होने पर, अहो! आनन्द का झरना बहने लगता है; फिर उसे बाह्य में कहीं चैन नहीं पड़ता। उसे शुभराग में भी हेयबुद्धि रहती है। बस! उपादेय मात्र एक स्वयं का ज्ञायकतत्त्व ही रहता है।

सम्यग्दृष्टि जीव, परिणाम में सविकल्प और निर्विकल्प दोनों

www.vitragvani.com

भाव से परिणमन करता है। सविकल्पदशा के समय भी उसे आत्मा का सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान तो रहता ही है। सम्यग्दृष्टि आत्मा को शुभाशुभभाव वर्तते हैं, तो भी उसे अन्दर तो श्रद्धान होता ही है कि 'यह कार्य मेरा नहीं, मैं परवस्तु का कर्ता नहीं; और राग के साथ मेरी चेतनवस्तु एकमेक नहीं।' वह अपने ज्ञान को राग के साथ एकमेक नहीं करता; सदा दोनों को भिन्न ही जानता है। वह रागादि को भिन्न जानता हुआ उनका कर्ता नहीं होता परन्तु उनका ज्ञाता ही रहता है।

सम्यग्दृष्टि को अनुभव में बहुत ही आनन्द आता है। वह श्रुतज्ञान द्वारा केवलज्ञान के साथ केलि करता है-ऐसा कहा है। उसके ज्ञान ने राग के साथ मित्रता (एकत्व) छोड़कर केवलज्ञान -स्वभाव के साथ मित्रता की है और केवलज्ञान को आवाज देकर बुलाया है।

ज्ञान को आत्मसन्मुख करने पर, निजरस से भरपूर, पर की अपेक्षा से अरस, आत्मा उसे सच्चे स्वरूप में वेदन में आता है। वह आत्मा किसी नयपक्ष द्वारा खण्डित नहीं होता; ज्ञानी का ज्ञान हमेशा विकल्पों से और संयोगों से भिन्न ही रहता है। विकल्प होने पर भी, विकल्पों से भिन्न परिणमता हुआ वह ज्ञान (ज्ञानपरिणति) ऐसा है कि विकल्पातीत होकर जीव को ठेठ मोक्ष तक पहुँचाता ही है।

भेदज्ञान होने पर, वह जीव सकल विकार के कर्तृत्वरहित होकर ज्ञायकरूप शोभित होता है। भेदज्ञान होने पर, जीव, आस्रवों से पराङ्मुख होता है; बन्धभाव से छूटकर मोक्षमार्ग की ओर ढलता जाता है। सम्यग्ज्ञानी, असार और अशरण ऐसे संसार से

www.vitragvani.com

पराङ्मुख होता है और परम सारभूत शरणरूप अपने ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकता है। भेदज्ञान होने पर चैतन्य परमेश्वर पुराण पुरुष प्रकाशमान होता है और अतीन्द्रिय शान्तिसहित ज्ञानज्योति जगमगा उठती है। ऐसा सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा ही है। वह सम्यग्दर्शन होने पर विकल्प टूटकर उपयोग स्वसन्मुख ढलता है, अर्थात् भेदज्ञान होकर प्रमाणज्ञान हो गया है; पश्चात् अब उसका उपयोग परसन्मुख जाये, तब भी वह भेदज्ञान प्रमाण तो साथ ही साथ वर्तता है। विकल्प से भिन्न पड़कर चैतन्य में तन्मय हुआ ज्ञान, फिर से कभी विकल्प में एकमेक नहीं होता, पृथक् का पृथक् ही रहता है। इसीलिए उसे मुक्त कहा है : **'स हि मुक्त एव।'** (समयसार कलश, १९८)

यह तो धर्मी की अन्तर की बातें हैं परन्तु बाह्य की कषायें भी बहुत नरम पड़ गयी होती हैं, सात व्यसनों का त्याग होता है, बाह्य संयोगों से उसका चित्त उदास रहता है, चैतन्य की परम शान्ति के समक्ष पुण्य-पाप के भाव उसे भट्टी जैसे लगते हैं। सम्यग्दृष्टि को पहिचानपूर्वक जैसा बहुमान सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति होता है, वैसा मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। सम्यग्दृष्टि के व्यवहार परिणाम भी चारों ओर से सुमेलवाले होते हैं।

सम्यग्दर्शन के साथ उसमें निःशंकता, निःकांक्षा, साधर्मी प्रेम, धर्म-प्रभावना आदि आठों अंग भी अपूर्व होते हैं। उसे आत्मा के स्वभाव में निःशंकता के कारण मृत्यु इत्यादि सम्बन्धी सात भय नहीं होते। ज्ञानचेतनारूप हुआ होने से वह कर्मों को तथा कर्म के फल को अपने से अत्यन्त भिन्न जानता है।

www.vitragvani.com

ऐसे अपूर्व महिमावन्त सम्यग्दर्शन की जिसे शुरुआत हुई, वह जीव साधक हुआ, अर्थात् ईसत् सिद्ध-छोटा सिद्ध हुआ। और अब अल्प काल में पूर्ण शुद्धता प्रगट करके वह साक्षात् सिद्ध परमात्मा हो जायेगा।

—ऐसे अद्भुत महिमावंत सम्यग्दर्शन प्राप्त सर्व आराधकों को कोटि-कोटि वन्दन! *(एक मुमुक्षु)*

...ऐसा परम उपकार मुझ पर किया है

जैसे, कोई व्यक्ति, समुद्र के बीच में डूबकी खा रहा हो तो उसका एक ही लक्ष्य है कि मैं समुद्र में डूबने से कैसे बचूँ? वहाँ यदि कोई सज्जन आकर उसे बचाता है तो कैसी उपकारबुद्धि होती है? अहा! इन्होंने मुझे समुद्र में डूबने से बचाया, इन्होंने मुझे जीवन दिया, इस प्रकार महाउपकार मानता है। इसी प्रकार भवसमुद्र में गोते खा-खाकर थके हुए जीव का एक ही लक्ष्य है कि मेरा आत्मा इस संसार समुद्र से किस प्रकार बचे? वहाँ कोई ज्ञानी पुरुष उसे तिरने का उपाय बतावें तो वह प्रमादरहित होकर, उल्लसितभाव से उस उपाय को अङ्गीकार करता है।

जिस प्रकार डूबते हुए मनुष्य को कोई जहाज में बैठने के लिए कहे तो क्या वह जरा भी प्रमाद करेगा? नहीं करेगा। इसी प्रकार संसार से तिरने के अभिलाषी आत्मार्थी जीव को ज्ञानी सन्त, भेदज्ञानरूपी जहाज में बैठने को कहते हैं, वहाँ वह आत्मार्थी जीव, भेदज्ञान में प्रमाद नहीं करता और भेदज्ञान का उपाय दर्शानेवाले सन्तों के प्रति उसे महान् उपकारबुद्धि होती है कि हे नाथ! अनन्त जन्म-मरण के समुद्र में से आपने मुझे बाहर निकाला। भवसमुद्र में डूबते हुए मुझे आपने बचाया। संसार में जिसका कोई प्रत्युपकार नहीं है - ऐसा परम उपकार आपने मुझ पर किया है।

www.vitragvani.com

स्वभाव की महिमा का घोलन करते-करते

अन्त में उसमें मग्न होकर मुमुक्षु स्वानुभव करता है

[२]

सम्यग्दर्शन होने पर पहले आत्मसन्मुख जीव का वर्तन तथा विचारधारा अपने आत्महित को पोषण दे, उस प्रकार का होता है। किसी भी प्रकार से आत्मा की महिमा ला-लाकर वह अपने स्वभाव की ओर झुकता जाता है और अन्तरस्वभाव -सन्मुख की किसी अद्भुत धारा द्वारा स्वानुभव करके निर्विकल्प हो जाता है।

सम्यग्दर्शन होने से पहले आत्मसन्मुख जीव का वर्तन तथा विचारधारा अपने आत्महित को पोषण दे, उस प्रकार का होता है। जिसे सम्यक्त्व प्राप्त करना है, वैसी तैयारीवाले जीव को सर्व प्रथम अपने ज्ञानस्वभाव की महिमा लक्ष्य में लेना चाहिए। मैं एक आत्मद्रव्य हूँ, मुझमें ज्ञान है और मेरे ही ज्ञान द्वारा मैं मेरे आत्मा का भान कर सकता हूँ-इस प्रकार की भावना से प्रथम ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करना, वह विचारता है। इसके लिए किसी ज्ञानी के समीप रहकर अथवा तो गुरुगम-अनुसार स्वयं सत्शास्त्रों का जैसे बने वैसे जिज्ञासु होकर अभ्यास करता है, अर्थात् तत्त्वों का भलीभाँति अभ्यास करता है। शास्त्र में कहा है कि 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' -इसलिए जीवादि सात तत्त्वों को ज्यों का त्यों जानना; अर्थात् जीव को जीवरूप से; अजीव को अजीवरूप से; पुण्य-पाप-आस्रव को आस्रवरूप से-इसी प्रकार सातों तत्त्वों को भलीभाँति जानकर श्रद्धा करना। सम्यग्दर्शन होने में प्रथम इन सात तत्त्वों की पहिचान खास होनी चाहिए।

www.vitragvani.com

इन सात तत्त्वों का स्वरूप विचारने पर समुच्चरूप से विकल्प का रस टूटता है और चैतन्य का रस घुलता है; इसलिए आत्मा की परिणति, स्वभावसन्मुख उल्लसित होती जाती है। उस समय अपना विचार, अर्थात् आत्मा का मनन करते हुए मैं एक आत्मा हूँ, ज्ञायक हूँ, सिद्ध हूँ, बुद्ध हूँ—इत्यादि विचार होते हैं अथवा तो अतीन्द्रिय हूँ, सर्व से भिन्न हूँ, ज्ञान मेरा स्वभाव है, राग मेरा स्वभाव नहीं—ऐसे स्व और पर की भिन्नता के विचार होते हैं, अथवा तो आत्मा की अनन्त शक्तियों के विचार होते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार से आत्मा की महिमा के और स्व-पर के भेदज्ञान के विचार होते हैं। ऐसे किसी भी प्रकार से अपने स्वभाव की ओर झुकने के विचार होते हैं। इस प्रकार जब अन्तर की कोई अद्भुत स्वभाव -सन्मुख की उग्र धारा शुरु होती है, उस समय फिर सभी प्रकार के विकल्प शान्त होने लगते हैं और चैतन्यरस घुलता जाता है। उस समय विशुद्धता के अति सूक्ष्म परिणामों की धारा द्वारा अन्तर में तीन करण हो जाते हैं; उन तीन करण के काल में जीव के परिणाम स्वरूप के चिन्तन में अधिक से अधिक मग्न होते जाते हैं। इस प्रकार आत्मा के स्वरूप में मग्न होने पर निर्विकल्पदशा होकर परम शान्त अनुभूति द्वारा जीव स्वयं अपने को साक्षात् अनुभव करता है... इसका नाम सम्यग्दर्शन।

— ऐसा सम्यग्दर्शन होने से पहले जीव का वर्तन विषयों से विरक्त, संसारी कार्यों से उदासीन, स्वभावसन्मुख के झुकाववाला, साधु-सन्तों-ज्ञानियों के संघ में रहने की अथवा तो विशेषरूप से एकान्त में आत्मचिन्तन करने का होता है। ऐसी बाहर की भी उसकी प्रवृत्ति होती है और अन्तर में स्वभाव के रस का घोलन

www.vitragvani.com

होता है। ऐसे जीव को उपशमसम्यक्त्व होता है, फिर क्षयोपशम और क्षायिकसम्यक्त्व होता है। पश्चात् अल्प काल में वह संसार -परिभ्रमण से छूटकर सम्यक्त्व के प्रताप से अपूर्व मोक्षसुख को पाता है। इसलिए मोक्षार्थी को ऐसे सम्यक्त्व की भावना भाना चाहिए और सर्व उद्यम से उसे प्रगट करना चाहिए।

✧✧✧✧

सम्यग्दर्शन की अद्भुत ताकत

❋ मैं जहाँ जाऊँगा, वहाँ सम्यक्त्व के प्रताप से सुख को ही भोगूँगा।

❋ सम्यग्दर्शन ने तो मोक्ष का सुख चखाया, वहाँ अब दुःख कैसा?

भगवान श्री कुन्दकुन्दस्वामी, अष्टप्राभृत में कहते हैं कि श्रावकों को पहले तो सुनिर्मल सम्यक्त्व प्रगट करना चाहिए। अत्यन्त निर्मल और मेरु समान निष्कम्प ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करके निरन्तर उसका ध्यान करना। चल-मल और अगाढ़ दोषरहित ऐसा अचल निर्मल और दृढ़ सम्यग्दर्शन प्रगट करके, दुःख के क्षय के लिये उसे ही ध्यान में ध्याना। जैसे महा संवर्तक हवा से भी मेरुपर्वत डिगता नहीं है; उसी प्रकार जगत की चाहे जैसी प्रतिकूलता से भी सम्यग्दृष्टि का श्रद्धान डिगता नहीं है; देव परीक्षा करने आवें तो भी सम्यक्त्व से डिगे नहीं। श्रावक को ऐसा दृढ़ सम्यक्त्व ग्रहण करके निर्विकल्प आनन्द का बारम्बार अनुभव करना-जिससे दुःख का क्षय हो।

www.vitragvani.com

दु:ख का क्षय करने के लिये अचलरूप से दृढ़रूप से सम्यक्त्व को निरन्तर ध्याओ-अर्थात् शुद्ध आत्मा को ध्याओ। गृहस्थपने में जो क्षोभ-क्लेश-दु:ख होता है, वह ऐसे सम्यक्त्व के परिणमन द्वारा नष्ट हो जाता है। देखो, यह दु:ख के नाश का उपाय! ऐसा सम्यक्त्व प्राप्त होने से धर्म होता है और आत्मा में निर्मलता बढ़ती जाती है। चाहे जैसे उपसर्ग आ पड़ें परन्तु ऐसे सम्यक्त्व से अन्दर शुद्धात्मा पर जहाँ नजर करे, वहाँ धर्मात्मा सम्पूर्ण संसार को भूल जाता है। ऐसा सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात् उसले सर्वज्ञ-अनुसार सर्व वस्तु का स्वरूप यथार्थ जाना है; इसलिए अब बाहर के कोई भी कार्य बिगड़ें या सुधरें, परन्तु वह अपने सम्यक्त्व से चलित नहीं होता। ऐसी सम्यक्त्व की निष्कम्पता द्वारा नि:शंकरूप से यथार्थ वस्तुस्वरूप का चिन्तवन करता है कि सर्वज्ञदेव ने वस्तुस्वरूप जिस प्रकार जाना है, उसी प्रकार उसका परिणमन होता है; कोई उसे बदलने में समर्थ नहीं है। इसलिए उसके परिणमन में इष्ट-अनिष्टपना मानकर रागी-द्वेषी होना निरर्थक है। पर का परिणमन पर के आधार से है, उसमें मुझे कोई इष्ट या अनिष्ट नहीं है; इसलिए उसमें कहीं राग-द्वेष करने का मेरा कार्य नहीं है; मैं तो मात्र ज्ञानस्वभावी हूँ-ऐसी वस्तु के स्वरूप की भावना से दु:ख मिटता है-यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है। इसलिए श्रावक को दु:ख के क्षय के लिये सम्यक्त्व ग्रहण करके मेरु जैसी दृढ़ता से उसे निरन्तर भाना, ध्याना।

गृहस्थपने में रहे हुए श्रावक को भी चैतन्य का निर्विकल्प ध्यान करना, जिससे निर्मलरूप से मेरु समान अकम्पपना आता है। चाहे जैसी प्रतिकूलता में भी उसकी श्रद्धा डिगती नहीं है। ऐसे

www.vitragvani.com

सम्यक्त्वरूप से परिणमन कर रहे जीव के दुष्ट अष्ट कर्मों का क्षय होता है।

देखो, यह सम्यक्त्व की सामर्थ्य! सम्यक्त्व होने पर अनन्त कर्म खिरने लगते हैं, गुणश्रेणी निर्जरा शुरु होती है। मोक्ष के लिये उसे आत्मा का ही अवलम्बन रहा, संसार का मूल कट गया, मोक्ष का बीज रोपकर अंकुर उगा। कर्मों की ओर का झुकाव नहीं रहा; इसलिए कर्म निर्जरित होते जाते हैं। इस प्रकार मिथ्यात्वरूपी बीज नाश हुआ, वहाँ कर्म का विषवृक्ष अल्प काल में सूख जाता है। अनन्तानुबन्धी की कषायें तो नष्ट हुई, अवशेष कषायें भी अत्यन्त मन्द हो गयी। उसे क्रम-क्रम से शुद्धता बढ़ती जाती है और अनुक्रम से चारित्र तथा शुक्लध्यान का सहकार मिलने पर सर्व कर्म नष्ट होकर, केवलज्ञान और मोक्ष प्रगट होता है। —यह सब सम्यग्दर्शन की महिमा है।

जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, उसके मोक्ष का दरवाजा खुल गया। जो उत्तम पुरुष पूर्व में सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, अभी होते हैं और भविष्य में प्राप्त होंगे, वह सब इस सम्यक्त्व का ही माहात्म्य जानकर, सम्यक्त्व को ही सिद्धि का मूल कारण जानकर, उसे प्राप्त करके, उसमें ही एकाग्रता करना चाहिए।

यह सम्यग्दर्शन धर्म का बीज है, कल्पवृक्ष है, चिन्तामणि है, कामधेनु है। छह खण्ड के राजवैभव के बीच रहनेवाले चक्रवर्ती भी ऐसे सम्यग्दर्शन की आराधना करते हैं। सम्यक्त्वी जानता है कि अहो! मेरी ऋद्धि-सिद्धि मेरे चैतन्य में है। जगत् की ऋद्धि में मेरी ऋद्धि नहीं है। जगत् से निरपेक्षरूप से मुझमें ही मेरी सर्व

www.vitragvani.com

ऋद्धि-सिद्धि भरी हुई है।

रिद्धि-सिद्धि-वृद्धि दीसे घट में प्रगट सदा,
अंतर की लक्ष्मी सो अजाची लक्षपति है;
दास भगवंत को उदास रहे जगत सों,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।

समकिती धर्मात्मा गृहस्थपने में रहने पर भी, अपने आत्मा को ऐसा अनुभव करते हैं। मेरी चैतन्य ऋद्धि-सिद्धि सदा ही मेरे अन्तर में वृद्धिगत है। मेरे अन्तर की चैतन्य-लक्ष्मी का मैं स्वामी हूँ। जगत से कुछ लेना नहीं। वह जिनभगवान का दास है और जगत से उदास है। सम्यग्दर्शन ही धर्म के सर्व अंगों को सफल करता है। क्षमा-ज्ञान-आचरण इत्यादि सम्यग्दर्शन बिना धर्म नाम प्राप्त नहीं करते। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, वह अज्ञान है; आचरण, वह मिथ्याचारित्र है और क्षमा वह अनन्तानुबन्धी क्रोधसहित है; इसीलिए सम्यग्दर्शन से ही क्षमा-ज्ञान-चारित्र इत्यादि की सफलता है।

धर्मात्मा को स्वप्न में भी चैतन्य और आनन्द की महिमा भासित होती है। सम्यक्त्व में कोई भी दोष स्वप्न में भी नहीं आने देता। ऐसे समकिती धर्मात्मा जगत में धन्य है, वे ही सुकृतार्थ है, वे ही शूरवीर हैं, वे ही पण्डित और मनुष्य हैं। भले शास्त्र पढ़े न हों, पढ़ना या बोलना न आता हो, तथापि वह महापण्डित है; उसने बारह अंग का सार जान लिया है; करनेयोग्य उत्तम कार्य उसने किया है; इसलिए वह सुकृतार्थ है। युद्ध में हजारों योद्धाओं को जीतनेवाला लोक में शूरवीर कहलाता है परन्तु हजारों योद्धाओं को

www.vitragvani.com

जीतने पर भी, अन्तर में जो मिथ्यात्व को नहीं जीत सका, वह वास्तव में शूरवीर नहीं है। जिसने मिथ्यात्व को जीत लिया, वह समकिती ही वास्तविक शूरवीर है। सम्यग्दर्शन के बिना मनुष्यों को पशु-समान कहा है और सम्यग्दर्शनसहित के पशुओं को भी देव-समान कहा है। लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करने से या अनेक प्रकार के पुण्य के शुभभाव करने से भी जो सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता; वैसा दुर्लभ सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, उसे अचलरूप से सम्हाल रखना, वही जीव को करनेयोग्य है।

ऐसे सम्यग्दृष्टि को मरण इत्यादि सात प्रकार के भय नहीं होते। वे आत्मा की आराधना में निःशंक है, इसलिए परलोक में मेरी गति कैसी होगी? मुझे नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे अथवा तो दूसरे क्या-क्या दुःख भोगने पड़ेंगे? ऐसा भय उसे नहीं होता। मैं जहाँ जाऊँगा, वहाँ सम्यक्त्व के प्रताप से मेरे चैतन्य के सुख को ही भोगूँगा; उससे भिन्न दूसरा कोई भोग मेरे ज्ञान में नहीं है—ऐसा उसे विश्वास है। वह समस्त कर्मकृत उपाधि को अपने से भिन्न अनुभव करता है; इसलिए कर्मकृत संसारी सुख-दुःख को वह अपने नहीं गिनता और जन्म-मरण का उसे भय नहीं है, क्योंकि आत्मा तो अजर-अमर है, उसे जन्म या मरण नहीं; ऐसे जन्म-मरण से रहित अविनाशी आत्माराम का अनुभव किया, फिर जन्म-मरण कैसे? और जन्म-मरण का भय कैसा? और मेरी चैतन्यलक्ष्मी मेरे आत्मा में ऐसी अभेद है कि कोई उसे लूट नहीं सकता; आत्मा स्वयं अपने आप में गुप्त है-स्वरक्षित है, कोई उसका नाश नहीं कर सकता, उसे हर नहीं सकता; इस प्रकार सम्यग्दृष्टि निजस्वरूप में सर्व प्रकार से निःशंक है तथा चैतन्य की अपार महिमा के समक्ष

www.vitragvani.com

अन्य किसी की महिमा उसे भासित नहीं होती; इसलिए उसे शरीरादि सम्बन्धी मद नहीं होता। इस प्रकार आठ गुणसहित और आठ मद इत्यादि सर्व दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्व द्वारा अपने आत्मा की साधना में आगे बढ़ते-बढ़ते वह धर्मात्मा अपने वांछित अनन्त सुखमय मोक्षधाम को अल्प काल में प्राप्त करता है। उन्हें हमारा नमस्कार हो। *[एक मुमुक्षु]*

तू शूरवीर होकर मोक्षपंथ में आ!

(प्रभु का मार्ग है शूरों का)

श्रीगुरु शिक्षा देते हैं कि हे भव्य! आत्मा के अनुभव के लिये सावधान होना... शूरवीर होना... जगत की प्रतिकूलता देखकर कायर नहीं होना... प्रतिकूलता के सामने मत देखना, शुद्ध आत्मा के आनन्द के समक्ष देखना। शूरवीर होकर-उद्यमी होकर आनन्द का अनुभव करना। 'हरि का मारग है शूरों का...' वे प्रतिकूलता में या पुण्य की मिठास में कहीं नहीं अटकते; उन्हें एक अपने आत्मार्थ का ही काम है। वे भेदज्ञान द्वारा आत्मा को बन्धन से सर्वथा प्रकार से भिन्न अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव करने का यह अवसर है—भाई! उसमें शान्ति से तेरी चेतना को अन्तर में एकाग्र करके त्रिकाली चैतन्य प्रवाहरूप आत्मा में मग्न कर... और रागादि समस्त बन्धभावों को चेतन से भिन्न अज्ञानरूप जान। इस प्रकार सर्व प्रकार से भेदज्ञान करके तेरे एकरूप शुद्ध आत्मा को शोध। मोक्ष को साधने का यह अवसर है।

अहो! वीतराग का मार्ग... जगत् से अलग है। जगत् का भाग्य है कि सन्तों ने ऐसा मार्ग प्रसिद्ध किया है। ऐसा मार्ग प्राप्त करके, हे जीव! भेदज्ञान द्वारा शुद्ध आत्मा को अनुभव में लेकर तू मोक्षपंथ में आ।

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन : उस सम्बन्धी मुमुक्षुओं का घोलन

[३]

सम्यग्दर्शन होने से पहले और होने के बाद जीव का वर्तन तथा विचारधारा किस प्रकार की होती है? इस सम्बन्धी दो निबन्ध आपने पढ़े। यह तीसरा निबन्ध है। इन निबन्धों द्वारा सम्यक्त्व भावना का घोलन करते हुए प्रत्येक जिज्ञासु को प्रसन्नता होगी।

रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत
नरभव फिर से नहीं मिले चेत चेत जीव चेत!

अनन्त काल से कभी महाभाग्य के उदय से इस जीव को मनुष्यपना प्राप्त होता है और उसमें भी उत्तम कुल तथा जैनधर्म के संस्कार प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। यह सब प्राप्त होने के पश्चात् भी जीव को किसी आत्मज्ञानी सन्त-गुरु का समागम प्राप्त हो तो वह वास्तव में सोने में सुगन्ध मिलने जैसा उत्तम योग होता है। तत्पश्चात् ऐसे सत् समागम द्वारा सिंचित धर्म संस्कार से जीव को ऐसा होता है कि अरे! यह मनुष्यगति और उत्तम जैनधर्म का सुयोग प्राप्त हुआ, उसका सदुपयोग यदि आत्महितार्थ नहीं कर लूँ तो इस देह के रजकण पृथक् पड़कर हवा में उड़ती रेत की तरह बिखर जायेंगे - वापस फिर से ऐसा मनुष्य अवतार कौन जाने कब मिलेगा! यदि आत्मा की दरकार बिना यह अवसर गँवाया तो फिर पछताने का पार नहीं रहेगा और दु:खी होकर चौरासी के अवतार में भटकना पड़ेगा। इसलिए हे जीव! तू चेत! और सावधान हो!! तुझे समझ करने का अवसर आ पहुँचा है। प्रमाद तज और मिथ्यात्वरूपी भ्रम को तोड़कर आत्मा को पहिचान।

www.vitragvani.com

ऐसी तीव्र लगन जिज्ञासु जीव को होते ही उसके विचारों में परिवर्तन आता है और उसे संसार का सुख खारा-खारा लगता है। उसे कहीं शान्ति नहीं लगती। कुटुम्ब-सगे-सम्बन्धी इत्यादि सब उसे पर लगते हैं और सत्समागम तथा वैराग्य-प्रेरक प्रसंग उसे विशेष रुचते हैं। उसे प्रतिक्षण ऐसा होता है कि मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ? किसकी शरण खोजूँ कि जिससे मुझे शान्ति हो; किसका सत्संग करूँ कि जिससे आत्मा की समझ पड़े? अरे, इस संसार के चक्र जाल में मुझे कहीं चैन नहीं है—

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?

संबंध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या?

—ऐसे विवेकपूर्वक अन्दर में शान्तभाव से विचार करता है तथा वह समझने के लिए गुरुवचन का श्रवण-मनन, स्वाध्याय करता है; संसार से चित्त को पराङ्मुख करके देव-गुरु की भक्ति में लीन करता है; पुरुषार्थ को दृढ़ करने के लिए अपनी वृत्तियों को इधर-उधर भटकने से रोककर आत्मविचार में जोड़ने के लिए यत्न करता है।

अन्तर का मार्ग खोजने को ज्ञानी गुरु के समीप जाकर अपने हृदय की वेदना दर्शाता है और चैतन्य के हित की विधि समझने के लिए चटपटाहटपूर्वक प्रश्न पूछकर, अपने मन का समाधान खोजने के लिए तत्पर होता है। वह अत्यन्त आर्दभाव से श्रीगुरु से प्रार्थना करता है कि — हे प्रभु! इस संसार भ्रमण से अब मैं थक गया हूँ, मुझे संसार सुख प्रिय नहीं है; संसार से छूटकर मेरा आत्मा परम सुख को प्राप्त करे—ऐसा उपाय कृपा करके मुझे बताओ। संसार

www.vitragvani.com

के चक्र से जीव अब थका है तो उसे सच्चा सुख कहाँ से मिले ?— ऐसा परम तत्त्व मुझे बताओ; इस प्रकार अन्तर की जिज्ञासापूर्वक गुरु से स्व-पर की भिन्नता का स्वरूप सुनते-सुनते उसे अधिक विचारने का मन होता है; ज्यों-ज्यों विचार करता है, त्यों-त्यों गहराई में यह बात उसे रुचती जाती है और गुरु वचन में दृढ़तापूर्वक आस्था होती है; अन्ततः तत्त्व प्रतीति होती है और कोई अद्भुत चमत्कारिक चैतन्यतत्त्व उसे कुछ लक्ष्यगत होता है, पश्चात् उसी में अधिक गहरा उतरकर और उसके मनन-चिन्तन में लवलीन बनता है; स्व-पर का अत्यन्त भेद, लक्ष्य में लेकर रागरहित शुद्ध आत्मद्रव्य कैसा होता है, यह विचार करता है। ऐसी विचारधारा में से उसे पहले जो अशान्ति और आकुलता थी, वह अब किंचित कम होने पर उसके पुरुषार्थ को वेग मिलता है, और विश्वास जागृत होता है कि इसी मार्ग से मुझे आत्मा की शान्ति मिलेगी। पश्चात् पुरुषार्थ की स्वसन्मुख गति को वेग प्रदाता, संसार से विरक्तता प्रेरक, बारह भावना विचारता है। पुण्य-पाप की शुभाशुभ वृत्तियों को आकुलता समझकर उनसे पार चैतन्य में चित्त जोड़ने हेतु यत्नशील होता है। जैसे-जैसे यत्न करता है, वैसे-वैसे उसकी उलझन मिटती जाती है और आत्मा का चित्रण स्पष्ट होता जाता है।

व्यवहार के प्रसंगों से अलग रहकर, अन्दर ज्ञान और राग की भिन्नता को अनुभव करने के लिये बारम्बार प्रयत्न करता है।— शोक के बाह्य प्रसंगों में आज तक तीव्र गति से जाती, वृत्तियाँ अब शमन होने लगती है और विचार की दिशा बारम्बार चैतन्य की ओर ढला करती है। इसलिए बाह्य प्रसंगों में उसका चित्त उदास रहता होने से मानो खोया-खोया सा रहा करता है।

www.vitragvani.com

वह दृढ़तापूर्वक जानता है कि जड़-चेतन समस्त द्रव्य, लक्षणभेद से भिन्न हैं। जीव का कार्य मात्र जानना और अपने निज परिणाम करना है। जगत् के अन्य पदार्थ और उनके कार्य मेरे नहीं हैं, तथापि उन्हें मेरा मानूँ तो स्वधर्म की मर्यादा का लोप और मिथ्यात्वरूपी महापाप होता है - ऐसा मैं कैसे करूँ? अनादि से अज्ञानवश अन्य पदार्थ और उनके परिणाम के प्रति अनेक प्रकार के अभिप्राय देता आया, इतना ही नहीं परन्तु उन्हें निज अभिप्रायानुसार बदलने की बुद्धि से अनन्त राग-द्वेष कर-करके दुःखी हुआ। अरे रे! अज्ञानभाव से तो मैंने अभी तक दुःख... दुःख... और दुःख ही वेदन किया है, परन्तु अब श्रीगुरु-सन्तों के प्रताप से उस दुःख का अन्त आया है। श्री तीर्थंकर भगवान का उपदेश महाभाग्य से मुझे प्राप्त हुआ और अब मुझे पता पड़ा कि मैं तो मात्र मेरे परिणामों का ही कर्ता हूँ। पर के साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है; इसलिए उसमें राग-द्वेष करना निरर्थक है। तत्त्वज्ञानपूर्वक इस प्रकार वर्तने से जगत में होनेवाले अन्य परिवर्तनों के प्रति अब उसे कुछ भी लेने-देने की वृत्ति या सुख-दुःख की वृत्ति नहीं रहती; इसलिए मिथ्या क्लेश-कषाय से छूटना सहज हो जाता है और वह अपने चैतन्यस्वरूप की अचिन्त्य महिमा विचारकर, अपना उपयोग स्व आत्मा की ओर मोड़ने का पुरुषार्थ करता है और बाह्य की ओर झुक रही परिणति को वापस मोड़ता है। शान्ति अनुभव करने के लिए शान्तिस्वरूप जो अपनी वस्तु है, उसमें ही उपयोग को ले जाता है क्योंकि निज आत्मा के अतिरिक्त बाहर से कहीं से शान्ति नहीं मिलती। इसका उसे विश्वास है। जिसमें मेरी शान्ति नहीं—ऐसे जगत के समस्त निमित्त-साधन इत्यादि पदार्थों

www.vitragvani.com

से मुझे क्या प्रयोजन है ? मुझे तो मेरे आत्मा के साथ ही प्रयोजन है। इस प्रकार स्व-पर का अत्यन्त पृथक्करण करके, स्वानुभूति के लिए वह चिन्तन करता है कि—

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान-दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!

मेरा स्वरूप शुद्धस्वरूप है। उसे अन्य किसी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; मैं सदैव एक चैतन्यमात्र हूँ, अखण्ड-आनन्दकन्द हूँ; सुखधाम और ज्ञानसागर हूँ, चैतन्य का फव्वारा हूँ; सत्-चित्-आनन्दमय मैं ही स्वयं हूँ, फिर अन्य से मुझे क्या काम है ? इस प्रकार निजस्वरूप का निर्णय करके वह अन्य विकारभावों की ओर से पराङ्मुख हो जाता है-भिन्न पड़ जाता है। बीच में परिणाम शिथिल हों तो पश्चातापपूर्वक बारम्बार उग्र प्रयत्न से चित्त को आत्मा में जोड़ता है। तत्त्वप्रतीति की ऐसी प्रयत्नदशा के समय उस जीव के अन्तर में सहज अत्यन्त कोमलता-समता-धर्मवात्सल्य-अहिंसाभाव-संसार के विषयों से विरक्ति और चैतन्य के प्रति महान उल्लास होता है। अन्यत्र कहीं उसका चित्त नहीं लगता। वैराग्य और तत्त्वज्ञानपूर्वक उसका सम्पूर्ण प्रयत्न अपने आत्मस्वभाव में ध्यान केन्द्रित करने की ओर ढला होता है; ऐसे अवसर में बाह्य में तीव्र रूप से हिंसा, चोरी, झूठ, परिग्रह, अब्रह्मचर्य के भावों में डूब जाना उसे सम्भव नहीं है; जहाँ-जहाँ कषायवाला वातावरण ज्ञात हो, वहाँ से उसका चित्त दूर भागता है। अहा! जहाँ अन्तर में लक्ष्य करने का अवसर आया, जहाँ चैतन्य की महा अतीन्द्रिय शान्ति का प्रपात उछलने की तैयारी हुई, वहाँ कषाय के प्रसंग में वह जीव कैसे खड़ा रहे ? - इस प्रकार बाह्य में उदासीनता

www.vitragvani.com

और अन्तर में चैतन्य की प्रसन्नता वर्तती है। अपना पुरुषार्थ स्वसन्मुख गति कर रहा है—ऐसा उसे दिखता है।

इस प्रसंग में बाहर की किसी भी अड़चन से वह जरा भी निरुत्साहित नहीं होता, उस ओर उसका लक्ष्य नहीं जाता; उसके लक्ष्य में तो चैतन्य भगवान ही घुला करता है... परिणति वेगपूर्वक स्वघर की ओर आ रही है और उपयोग की अधिक से अधिक सूक्ष्मता द्वारा समस्त सूक्ष्म विपरीतताओं को भी तोड़ता जाता है।

— इस प्रकार ज्ञानस्वभाव की महिमा को घोंटते-घोंटते अन्ततः निज पुरुषार्थ की प्रचण्ड सामर्थ्य द्वारा एक क्षण में उस जिज्ञासु जीव की चेतना में स्वभावसन्मुख की कोई अपूर्व धारा उल्लसित होने से उसकी ज्ञानपरिणति अन्तर्मुख होकर, अज्ञान-अन्धकार को भेदती हुई, दर्शनमोह को तोड़ती हुई, निर्विकल्प आनन्दपूर्वक अतीन्द्रिय स्वसंवेदन द्वारा शान्ति के समुद्र अपने भगवान आत्मा को प्रत्यक्ष कर लेती है। अहा! उस अवसर को धन्य है! तब अपूर्व सम्यग्दर्शन से उसके सर्व प्रदेश आनन्दरस में निमग्न हो जाते हैं। आत्मा में आनन्द... आनन्द की धारा बहती है और अपूर्व प्रसन्नता से उसके रोम-रोम भी पुलकित हो जाते हैं। अहा! चैतन्य के अखण्ड सुख का नमूना चखने को मिला। मुक्ति का द्वार खुल गया... उस धन्य पल की क्या बात!!

महा भयंकर तूफानी सागर में, मध्य समुद्र में डूबते और मगरमच्छ से पकड़े हुए मुसाफिर को, अनायास तिरने के लिये कोई आधार प्राप्त हो जाये और महा प्रयत्न से वह किनारे आ पहुँचे, उसे जो अकथ्य आनन्द होता है, वैसा आनन्द आत्मा में सम्यक्त्व

www.vitragvani.com

होने पर हो जाता है (उपमा के लिए स्थूल दृष्टान्त है, वरना तो सम्यक्त्व के अतीन्द्रिय महा आनन्द को बाहर की कोई उपमा नहीं दी जा सकती)। एक बार ऐसे आनन्द का स्वाद चखा, फिर उसे जगत एकदम भिन्न-भिन्न लगता है। पर्वत पर बिजली गिरने से जैसे बड़ी गहरी दरार पड़ जाये; उसी प्रकार भेदज्ञानरूपी बिजली द्वारा ज्ञान और राग के बीच, स्व और पर के बीच बड़ी दरार पड़ने पर उनकी अत्यन्त भिन्नता स्पष्ट भासित होती है। अब वे कभी एकरूप भासित नहीं होते।

अनादि काल के दु:ख समुद्र में से बाहर निकलकर सादि -अनन्त सुख के महा समुद्र में प्रवेश हो गया, उसके परम आह्लाद की क्या बात!! उसकी अधिकता आश्चर्यकारी होती है। जगत् की समस्त प्रकार की द्विधाओं में से निकलने का मार्ग उसे हाथ आ गया है। अहा!

मन शांत भयो, मिट सकल द्वंद;
चाख्यो स्वातम-रस, दु:ख निकंद।

—ऐसे स्वात्मा का आनन्द रस चखा, वहाँ समस्त द्वंद-फंद इत्यादि मिट गये और परम शान्तदशा हुई। उसे अब राग और द्वेष का रस छूट गया, मध्यस्थता-वीतरागता प्रिय लगी। 'मेरे शान्तरसपूर्ण आत्मा में ही मैं हूँ, अन्यत्र कहीं मैं नहीं।' - ऐसा हमेशा रहा करता है। लक्ष्य तो बस! आत्मा का... आत्मा का... और आत्मा का! बीच में चाहे जो प्रसंग आवे, चाहे जो योग बने परन्तु आत्मा के अतिरिक्त कुछ इष्ट नहीं लगता, कहीं मन नहीं रमता। व्यापारादि योग्य धन्धे, उसे स्व-पोषण के अर्थ करना पड़ें,

www.vitragvani.com

उनमें भी वह मध्यस्थतापूर्वक और आत्मा के लक्ष्यपूर्वक ही वर्तता है। जल-कमलवत् रहने का उसका सहज जीवन होता है और ऐसे सहज जीवन को अधिक वेग प्रदान करे, ऐसे धर्मचर्चा-तीर्थयात्रा-स्वाध्याय-जिनमहिमा इत्यादि प्रसंगों में उसे प्रेम होता है। उसके विचार-वाणी और वर्तन हमेशा तत्त्व से अविरुद्ध रहा करते हैं। जिनमार्ग से विपरीत किसी मार्ग को पुष्टि नहीं देता और बोलना-चलना इत्यादि प्रवृत्ति में भी उसे आत्मस्वभाव की और जैनधर्म की महिमा तैरती है। साधर्मी ज्ञानी को देखने पर उसके हृदय में आनन्द उल्लसित हो जाता है।

ऐसी अपूर्व सम्यक्त्वदशा के पश्चात् ही विशेष आगे बढ़ने के लिये उसका चित्त अब संयम की ओर ढलता जाता है। बाह्य सुख और सुविधायें उसे सुख के किंचित भी कारणभूत न लगने से, संयमित जीवन की भावना उसके हृदय में सदा ही वर्तती है। देहात्मबुद्धि मिट जाने से उसे बहुत आकुलता कम हुई ज्ञात होती है; इस प्रकार सम्यग्दर्शन के प्रत्यक्ष फल को वह आत्मा में निरन्तर अनुभव करता है; सम्यग्दर्शन द्वारा भव-अटवी में से बाहर निकलकर सिद्धालय में प्रस्थान करने का मङ्गल मुहूर्त करके अब वह सम्यग्दर्शन के आधार-आधार से जीवन को उज्ज्वल करते हुए मुक्तिपुरी में चला जाता है। ●

नोट - जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो, वही उसके द्वारा होनेवाले अनुभव का वर्णन यथार्थ कर सकता है। हमसे तो पढ़ा हुआ, सुना हुआ, या वैसे जीव को देखने से हुए भावों का ही वर्णन शक्य है। यह लिखते-लिखते ऐसे सम्यक्त्व सम्बन्धी भावों का जो बहुत-बहुत घोलन हुआ और उसकी गहरी महिमा जागृत हुई, वही महान लाभ है।

www.vitragvani.com

आत्मसन्मुख जीव की सम्यक्त्व साधना

[४]

जैनमार्ग को भूलकर भौतिक पदार्थों में सुख माननेवाले दुनिया के जीव, भोग-सन्मुख दौड़ रहे हैं और उनके मनमानी ज्वालायें भभक रही हैं; अब उसमें से कोई विरल जीव, जिन्हें ज्ञानी गुरुओं के प्रताप से आध्यात्मिक सुख की भावना जागृत हुई है, जिन्हें अपूर्व आत्मशान्ति का मार्ग प्राप्त करना है, आत्मा को पहिचान कर उसकी साधना करना है; इस प्रकार दुःखमय संसार से दूर होकर सम्यग्दर्शन द्वारा मुक्ति के महान सुख का मार्ग लेना है, वैसे आत्मसन्मुख जीव का वर्तन और विचारधारा अनोखी होती है।

सम्यक्त्व की तैयारीवाला वह जीव, सम्यक्त्व की पूर्व भूमिका में प्रथम तो अपने ज्ञानस्वभाव की महिमा लक्ष्य में लेता है; उसे उस स्वभावसन्मुख ढलते विचार होते हैं। कोई अमुक ही प्रकार का विचार या विकल्प हो—ऐसा नियम नहीं है परन्तु समुच्चयरूप से विकल्प का रस टूटकर चैतन्य का रस घुँटे-अर्थात् उसकी परिणति, स्वभावसन्मुख उल्लसित होती जाए—ऐसे ही परिणाम होते हैं। किसी को मैं ज्ञायक हूँ—ऐसे विचार होते हैं; किसी को सिद्ध जैसा आत्मस्वरूप है—ऐसे विचार होते हैं; किसी को आत्मा की अनन्त शक्ति के विचार होते हैं-ऐसे किसी भी पहलू से जीव को अपने स्वभाव की ओर झुकने के विचार होते हैं। पश्चात् जब अन्तर की कोई अद्भुत उग्रधारा से स्वभावसन्मुख गति करता है, तब विकल्प शान्त होने लगते हैं और चैतन्यरस घुलता जाता है। उस समय विशुद्धता के अति सूक्ष्म परिणामों की धारा बहती है।

www.vitragvani.com

जीव के परिणाम, स्वरूप के चिन्तन में अधिक से अधिक मग्न होते जाते हैं। पहले आत्मा के स्वभाव से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विचार होते हैं, उनके द्वारा स्वभाव-महिमा को पुष्ट करता जाता है परन्तु उस समय स्वभाव को पकड़ने के लिये ज्ञान का महत्त्व है; वह ज्ञान, विकल्प से हटकर स्वभाव तरफ ढलता है, तब उसे अपने सच्चे स्वरूप की महिमा समझ में आती है और स्वयं कैसा है - उसका भान होता है। वह ऐसा जानता है कि

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान-दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!
शुद्धात्म है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम;
मुक्तिपुरी है मेरा धाम, मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम॥

मैं शुद्ध, एक हूँ; रागादि भावों से अत्यन्त भिन्न मेरी चेतना है। अग्नि का कण भले छोटा हो परन्तु वह कहीं बर्फ की जाति का तो नहीं ही कहलायेगा न? उसी प्रकार कषाय अंश भी भले शुभ हो परन्तु वह कहीं अकषाय शान्ति की जाति तो नहीं कहलायेगी न! इस प्रकार वह जीव, विकल्प और ज्ञान की जाति को अत्यन्त भिन्न समझता है। राग स्वयं दु:ख है, इसीलिए उसमें एकत्वबुद्धि करना, वह दु:ख का मूल है। आत्मसन्मुख होने के इच्छुक जीव उससे अलिप्त रहने का प्रयत्न करते हैं, वह विचारते हैं कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? किस कारण मुझे इस संसार की पीड़ा है, मैं इसे किस प्रकार त्यागूँ? वह जानता है कि परपदार्थ के प्रति मोह के कारण ही मैं मेरे आत्मस्वरूप को भूला हूँ; इसलिए सर्व प्रथम आत्मा को पहिचानकर, मोह को छोड़ूँ-ऐसा विचारकर, एकान्त में बैठकर, शान्तचित्त से आत्मस्वरूप

www.vitragvani.com

का चिन्तवन करता है, अन्दर उसे देखने का (पहिचानने का) प्रयत्न करता है। तुरन्त थोड़े दिनों में ही उसे न दिखे (न पहिचान में आवे) तो भी आलस किये बिना, रुचि और धुन छोड़े बिना वह दृढ़ प्रयत्न चालू ही रखता है।

पुण्यमय भावों से जीव को स्वर्गादि की प्राप्ति होती है और पापमय भावों से नरकादि गति की प्राप्ति होती है। संसार की चारों गतियों से छूटने के लिये वह मुमुक्षु, पुण्य-पाप दोनों से रहित ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय करता है। वह जानता है कि विकल्प से निर्णय, वह सच्चा निर्णय नहीं है; ज्ञान में वस्तुस्वभाव का स्वीकार आकर जो निर्णय हो, वही सच्चा निर्णय है। वह निर्णय कब होता है ? कि ज्ञानपर्याय, राग से पृथक् होकर, अन्तर्मुख होकर अपने स्वभाव को अखण्ड-अखण्डस्वरूप से लक्ष्य में ले, तभी आत्मस्वरूप का सच्चा निर्णय होता है और ऐसे निर्णयपूर्वक ज्ञान का झुकाव शुद्धात्मा की ओर ढलता है। इस प्रकार आत्मसन्मुख होने से ही सिद्धि का मार्ग खुलता है। सिद्धपद की आराधना आत्मा के अन्दर ही होती है।

आत्मा स्वयं ज्ञान-दर्शन-सुखस्वभावी महान पदार्थ है। उसमें कोई क्लेश नहीं। अहा! निरालम्बी आत्मवस्तु! उसे साधनेवाले सन्तों की दशा भी अन्तर में बहुत निरालम्बी होती है। वे कहते हैं कि हे जीव! तुझे परमेश्वर को देखना हो और परमेश्वर होना हो तो परमेश्वर की शोध अन्तर में ही कर। परमेश्वरपना आत्मा में ही है। इस प्रकार मुमुक्षु जीव अन्तरशोध में वर्तता है।

जीवादि पदार्थों के स्वरूप की यथार्थ श्रद्धा करनेवाला

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन, वह धर्म का मूल है। वह प्राप्त होने पर जगत् में ऐसा कोई सुख ही नहीं कि जो जीव को प्राप्त न हो; इसलिए सम्यग्दर्शन को ही सर्व सुख का मूलकारण जानकर उसे सेवन करो। इस संसार में वही पुरुष श्रेष्ठ है, वही कृतार्थ है और वही पण्डित है कि जिसके हृदय में निर्दोष सम्यग्दर्शन प्रकाशित है। सम्यग्दर्शन ही सिद्धि प्रसाद का प्रथम सोपान है। मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; वही दुर्गति के द्वार को रोकनेवाला मजबूत अवरोधक है, वही धर्म के वृक्ष का स्थिर मूल है, वही मोक्षपुरी का प्रवेश द्वार है और वही शीलरूपी हार के मध्य लगा हुआ श्रेष्ठ रत्न है; संसार की बड़ी बेल को वह मूल में से उखाड़ डालता है—ऐसी सम्यक्त्व की महिमा आत्मसन्मुख जीव जानता है; इसीलिए उसके लिए वह अत्यन्त पुरुषार्थ करता है। सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त संसार का अन्त आ जाता है और अनन्त मोक्षसुख का प्रारम्भ होता है। जैसे शरीर के सर्व अंगों में मस्तक प्रधान है और चेहरे में नेत्र मुख्य है; इसी प्रकार मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सर्व धर्मों में सम्यग्दर्शन ही मुख्य है।

धर्मी जीव, चैतन्य के स्वाद के बल से रागादि समस्त परभावों को भिन्न जानता है; अनादि से राग में जो कभी नहीं आया था, ऐसा नवीन वेदन धर्मी को चैतन्यस्वाद में आता है। उसे आत्मा की अनुभूति में अतीन्द्रिय चेतनरस का जो अत्यन्त मधुर स्वाद आया, उसमें अनन्त गुण का रस समाहित हो जाता है। ऐसे वेदनपूर्वक पर्याय में जो चैतन्यधारा प्रगट होती है, उसमें रागादि अन्य भावों का अभाव है; इसीलिए राग का और ज्ञान का स्वाद अत्यन्त स्पष्ट भिन्न ज्ञात होता है। रागरहित वह चैतन्यस्वाद अत्यन्त मधुर और

www.vitragvani.com

जगत के अन्य समस्त रसों से अलग प्रकार का है। आनन्द पर्यायसहित के द्रव्य में व्याप्त, आत्मा, वह मैं हूँ – ऐसा धर्मी जीव अनुभव करता है। सब विकल्प उस अनुभूति से भिन्न रह जाते हैं, उन विकल्पों द्वारा आत्मा प्राप्त नहीं होता। आत्मसन्मुख जीव, चेतनस्वाद के अनुभव में राग को नहीं मिलाता; वह आत्मा को स्व रस में ही रखता है और पर्याय भी वैसी ही होकर परिणमित होती है। मोह जरा भी अच्छा नहीं, मैं तो द्रव्य में तथा पर्याय में सर्वत्र एक चैतन्यरस से भरपूर हूँ; सर्व प्रदेशों से शुद्ध चैतन्यप्रकाश का निधान हूँ – ऐसा वह अनुभव करता है।

—ऐसे चैतन्यस्वभाव को स्वीकार करनेवाले श्रद्धा-ज्ञान, उन रागादि परभावों से भिन्न ही रहते हैं और वे अन्दर के आनन्द तथा अनन्त गुण की निर्मलपरिणति के साथ एकरसरूप परिणमते हैं। अनन्त गुण के स्वाद से एकरस भरपूर चैतन्यरस धर्मी को अनुभव में / स्वाद में आता है। स्त्री, पुत्र, मान-अपमान इत्यादि सम्बन्धी अनेक प्रकार के दु:खों से और राग-द्वेष से छूटने के लिये ऐसे आत्मा की भावना ही एक अपूर्व औषध है।

दु:ख से छूटने और सुख प्राप्त करने के लिए आत्मस्वभाव की आराधना, वह मुमुक्षु जीव का ध्येय है। इस ध्येय की सफलता के लिए आराधक-धर्मात्माओं का सत्समागम करके वह अपनी आत्मार्थिता को पुष्ट करता है। ऐसे आराधक जीवों का सत्समागम प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है क्योंकि जगत के जीवों में आराधक जीव अनन्तवें भाग ही हैं; ऐसा होने पर भी, आत्मा को साधने के लिए जागृत मुमुक्षु को किसी न किसी प्रकार से उसका मार्ग बतानेवाले

www.vitragvani.com

ज्ञानी मिल जाते हैं। रागादि से भिन्न ज्ञानचेतनारूप परिणमित ज्ञानी को पहिचानकर, वह उनका समागम करता है और उन ज्ञानी के ज्ञानभावों की पहिचान होने पर, उस आत्मार्थी जीव के परिणाम, आत्मस्वभाव की ओर झुकते हैं। उसकी आत्मार्थिता पुष्ट होती है और राग का रस टूटता जाता है। ऐसा होने पर, कभी नहीं अनुभूत —ऐसी अपूर्व आत्मशान्ति के भाव उसे अपने में जागृत होते हैं। ज्ञानी के सच्चे समागम का ऐसा फल अवश्य आता ही है।

आत्मार्थी जीव को दुर्लभ सत्समागम की प्राप्ति का और आत्मार्थ की पुष्टि करके शान्ति के वेदन का यह सुनहरा अवसर है। उसे ऐसा लगता है कि अब मेरा काम एक ही है कि सब में से रस छोड़कर, प्रतिसमय स्व की सम्हाल करके, सब प्रकार से आत्मवस्तु की महिमा घोंट-घोंटकर, राग से भिन्न चैतन्यभाव का अन्तर्वेदन करना। वह विचार करता है कि अब मैं मेरे प्रयत्न में गहरा उतरूँगा। मेरा आत्मा ही आनन्द का महा सागर है, उसमें डुबकी लगाकर, उसके एक बूँद का स्वाद लेने से भी रागादि समस्त परभावों का स्वाद छूटकर चैतन्य के आनन्द का कोई अपूर्व स्वाद वेदन में आता है, तो सम्पूर्ण आनन्द के समुद्र की क्या बात! कोई तीव्र ताप में से शीतल पानी के सरोबर में डुबकी मारे और उसे शीतलता का अनुभव हो, इसी प्रकार इस संसार में अनादि से अज्ञान और कषाय के ताप में संतप्त अज्ञानी जीव, चैतन्य तत्त्व का भान करके शान्त सरोवर में डुबकी मारता है। वहाँ उसे अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है।

धर्मी जीव चाहे जैसे अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों के बीच भी

www.vitragvani.com

अपने चैतन्यतत्त्व की शान्ति को नहीं चूकता। जैसे स्वर्ण, अग्नि में तपने पर भी स्वर्ण ही रहता है; उसी प्रकार संयोग और राग-द्वेष के मध्य भी धर्मात्मा का ज्ञान, वह ज्ञान ही रहता है। राग से भिन्न ज्ञानतत्त्व की अनुभूति धर्मी को सदा वर्तती है और वही मोक्ष का साधन है। उस धर्मी जीव को चैतन्य के आनन्द की ऐसी खुमारी होती है कि दुनिया कैसे प्रसन्न होगी और दुनिया मेरे लिए क्या बोलेगी - यह देखने को रुकता नहीं है; लोकलाज को छोड़कर वह तो अपनी चैतन्य साधना में निमग्न है।

जिस प्रकार आकाश के मध्य अधर अमृत का कुआँ हो, वैसे मेरा चैतन्य गगन निरालम्बी और आनन्द के अमृत से भरपूर है; उस आनन्द का स्वाद लेने में बीच में रागादि के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं रहती। अपने कार्य के लिए दूसरे का अवलम्बन माँगना तो कायर का काम है; मोक्ष के साधक शूरवीर होते हैं, किसी के अवलम्बन बिना अपने स्वावलम्बन से ही वे अपने मोक्ष कार्य को साधते हैं।

जिसे आत्मा की लगन लगी है -ऐसे जीव को आत्मा की अनुभूति के अतिरिक्त अन्य किन्हीं परभावों में या संयोगों में कहीं चैन नहीं पड़ता, उसे अपने चैतन्य की ही धुन लगी होती है। दुनिया मेरे लिये क्या मानेगी और क्या कहेगी - यह देखने को वह रुकता नहीं है। वह कहता है कि दुनिया, दुनिया के घर रही; मुझे तो दुनिया को एक ओर रखकर मेरा आत्महित कर लेना है - इस प्रकार आत्मसन्मुख जीव को दुनिया का रस छूट जाता है और चैतन्य का स्वाद लेने में उपयोग ढलता है। उसे ज्ञान और विकल्प की भिन्नता भासित होती है कि विकल्प का एक अंश भी मेरे ज्ञान

www.vitragvani.com

का कार्य नहीं है। विकल्प के स्वाद की अपेक्षा मेरे ज्ञान की जाति ही अलग है। राग का एक अंश भी ज्ञानरूप भासित नहीं होता। ऐसे निर्णय के बल से जिसे एक बार आत्मा का रंग चढ़ जाये, वह जीव, राग से भिन्न पड़कर ज्ञानस्वभाव का साक्षात् अनुभव करता है। विकल्पों से अत्यन्त रिक्त होकर ज्ञानस्वभाव में तन्मयरूप से परिणमित हुआ वह जीव, अपने को परमात्मरूप अनुभव करता है, और ऐसा अनुभव करनेवाला जीव अल्प काल में साक्षात् परमात्मदशा को पाता है। आत्म-अनुभूति होने के काल में आत्मा अपने निजरस से ही अनन्त गुण के शान्त-अनाकुल स्वादरूप परिणमता है; उसमें विकल्प का स्वाद नहीं, अकेले चैतन्यरस का स्वाद है।

ऐसे आत्म-सन्मुख जीव का वर्तन अलग प्रकार का होता है। दुनिया के बीच रहता हुआ होने पर भी, दुनिया से भिन्न उसका अन्तर काम करता है। दुनिया के विषयों का रस छूटकर उसे तो मात्र आत्मा की धुन लगती है। कषाय के प्रसंग उसे नहीं रुचते; दुनिया की पंचायत वह अपने सिर नहीं रखता। अपने महान आत्मतत्त्व को लक्ष्य में लेने के अतिरिक्त अन्य किन्हीं कार्यों में आत्मा की शक्ति खर्च करना उसे नहीं पोसाता; इसीलिए सर्व शक्ति से अपने परिणाम को वह आत्मसन्मुख ही झुकाता जाता है।

अरे! अनन्त काल से मेरा मूल्यवान स्वरूप समझे बिना मैंने अपने आत्मा का बिगाड़ किया है परन्तु अब इस भव में तो मुझे मेरे आत्मा का सुधार कर लेना है। अपूर्व सत्समागम प्राप्त हुआ है, वह मुझे सफल करना है। अब भव दुःख की मुझे थकान लगी है, जगत की महिमा मुझे नहीं चाहिए; मुझे तो मेरे आत्मा की शान्ति

www.vitragvani.com

चाहिए - ऐसा विचारकर वह अन्तर्मुख होता है। एक आत्मार्थ साधना ही उसका लक्ष्य है।

अभी वर्तमान काल में भी ऐसे आत्मसन्मुख जीव दिखायी देते हैं, उनका पुरुषार्थ चालू है और वे भी आत्मानुभव प्राप्त करेंगे। ऐसे आत्मसन्मुख जीव दूसरे जिज्ञासु को भी आत्मा की अपार महिमा समझाकर सच्चा मार्ग बताते हैं और कुमार्गों से छुड़ाते हैं।

अरे रे! अभी तो दुनिया में कुगुरु अनेक प्रकार की युक्तियों से भोले जीवों को कुमार्ग में फँसाते हैं। दुनिया तो सदा ऐसी ही चलनेवाली है, परन्तु हे जिज्ञासु बन्धुओं! तुम ऐसा आनन्ददायक जैनधर्म और वीतरागमार्ग को प्राप्त हुए, आत्मस्वरूप समझानेवाले सन्तों का योग तुम्हें मिला, तो अब कुगुरुओं के समक्ष भूल-चूक से भी झाँककर भी मत देखो। क्योंकि उसमें आत्मा का अत्यन्त बुरा होता है। ऐसे सरस वीतराग जैनमार्ग को ही परम बहुमान से आदर करना, यही एक इस जगत में परम हितकर है।

हे भाई! यह अवसर प्राप्त करके तू जाग। अब नींद का समय पूरा हुआ... इसलिए जागृत होकर, आत्मा को सम्हालकर, भवदुःख से छूटने का और मोक्षसुख को प्राप्त करने का उद्यम कर। यह सम्यक्त्व प्राप्ति का सुनहरा अवसर है।

सम्यग्दर्शन के पश्चात्...

श्रीगुरु के उपदेश से जो जीव जागृत हुआ, आत्मा का स्वरूप सम्हालकर स्वसन्मुख हुआ और सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ; उस जीव का सम्पूर्ण जीवन पलट जाता है। जैसे अग्नि में से बर्फ बन

www.vitragvani.com

जाये, वैसे उसका जीवन अशान्ति में से छूटकर परम शान्त बन जाता है। कदाचित् बाहर के जीव यह देख नहीं सकते परन्तु उसकी अन्दर की आत्मतृप्ति, उसका चैतन्य प्राप्ति का परम सन्तोष और सतत् प्रवाहित मोक्ष साधना, उसे तो वह स्वयं अपने स्वसंवेदन से सदा जानता है। उसका सम्पूर्ण आत्मा उलट-पुलट हो जाता है। अहा! उस अद्भुत दशा को वाणी से वर्णन करना कठिन है।

मुमुक्षु लोगों का सद्भाग्य है कि अभी ऐसे कलयुग में भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पंथ बतलानेवाले, भावी तीर्थंकर सन्त मिले हैं, जिन्होंने अज्ञान अंधकार में भटकते हुए जीवों को ज्ञान का प्रकाश दिया है; मार्ग भूले हुए जीवों को सत्य मार्ग बतलाया है। दुनिया में प्रचलित कुदेव-कुगुरु सम्बन्धी अनेक भ्रम और कुरिवाजों में से अन्धश्रद्धा छुड़ायी है और सीधी सड़क जैसा सत्य मार्ग नि:शंक से बतलाया है। उनके प्रताप से आत्महित के सच्चे मार्ग को पहिचानकर अनेक जीव आत्मसन्मुख हुए हैं, तो कोई-कोई जीव ऐसे भी हैं कि जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है।

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मसन्मुख जीव की अन्तरदशा तथा विचारधारा पहले की अपेक्षा अत्यन्त भिन्न प्रकार की होती है। वह स्वयं को राग से भिन्न चैतन्य की अनुभूतिस्वरूप मानता है। वह जानता है कि मेरा चैतन्यस्वरूप ही जगत् में सर्वश्रेष्ठ है। आत्मा, देह से भिन्न एक महान चैतन्यतत्त्व है; आत्मा का स्वरूप इन्द्रियों से अथवा राग से नहीं मापा जा सकता। आत्मा शुद्ध-बुद्ध-निर्विकल्प-उदासीन-ज्ञान-आनन्दस्वरूप है। शुभाशुभराग का सेवन मैं अनादि से करता था परन्तु उसरूप मेरा आत्मा हो नहीं गया था; मेरा आत्मा तो सुख का भण्डार चैतन्य राजा है; उसे

www.vitragvani.com

पहिचानकर तथा उसकी श्रद्धा करके, अब उसी की सेवा से मेरे आत्मा को मोक्ष की सिद्धि होगी।

सम्यग्दर्शन होने पर, सुख का भण्डार खुल जाता है। सम्यग्दर्शन के साथ में स्वसंवेदनज्ञान अतीन्द्रिय होता है; इसलिए उस ज्ञान में परम सूक्ष्मता आ जाती है; चैतन्य के गम्भीर भावों को वह पकड़ लेता है। नयपक्ष के विकल्प भी उसे अत्यन्त स्थूल लगते हैं; उसे विकल्पातीत अतीन्द्रिय आनन्द होता है। वह ज्ञान को इन्द्रियों से भिन्न जानता है और निज रस में रमता है, उसे आत्मा की वास्तविक प्रीति लगी होती है—

इसमें सदा रतिवन्त बन, इसमें सदा सन्तुष्ट रे!
इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥

—कुन्दकुन्दस्वामी ने इस गाथा में कहे अनुसार उसकी दशा हो गयी होती है। सम्यक्त्वरूप से परिणमित वह आत्मा सम्पूर्ण जगत पर तैरता है। किसी परभाव से या संयोग से उसका ज्ञान दबता नहीं परन्तु वह पृथक् का पृथक् ज्ञानरूप ही रहता है; इसलिए वह तैरता है। जैसे पर्वत पर बिजली गिरे और दो टुकड़े हों, वे फिर संधते नहीं हैं। उसी प्रकार भेदज्ञान द्वारा स्वानुभूतिरूपी बिजली पड़ने से ज्ञान और राग की भिन्नता होकर दो टुकड़े भिन्न हुए, वे अब कभी एक नहीं होंगे। भेदज्ञान के बाद विकल्पों से उसका ज्ञान भिन्न ही रहता है; उसका ज्ञान कभी राग के साथ एक होकर परिणमित नहीं होता। ज्ञानी का ज्ञान सदा ही विकल्पों से भिन्न है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति सातवें नरक के प्रतिकूल संयोगों के बीच भी जीव कर सकता है। संयोग का लक्ष्य

www.vitragvani.com

छोड़कर, ज्ञान की दशा को अन्तर में आनन्द के समुद्र में झुका दिया, वहाँ संयोग, संयोग में रहे और आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में आया।

चैतन्य के अनुभव में ज्ञान की कोई अद्भुत धीरज और गम्भीरता होती है; चैतन्यसमुद्र अन्दर से स्वयं ही पर्याय में उल्लसित होता है। वहाँ कोई विकल्प नहीं रहते। अन्तर की गहराई में से उसे अपने चैतन्यतत्त्व की अपरम्पार महिमा होती है। अहा! आत्मा अनन्त गम्भीरभावों से भरपूर है। सम्यग्दर्शनरूप हुए आत्मा की अन्दर की स्थिति अत्यन्त गम्भीर होती है। मैं ज्ञायकभाव से भरपूर, परम आनन्द से पूर्ण और इन्द्रियों से पार-ऐसा महान पदार्थ हूँ। चैतन्य से उत्कृष्ट और सुन्दर दूसरी वस्तु जगत में कोई नहीं है। आत्मा का वीतरागी सामर्थ्य अचिन्त्य है, उसके गुणों की विशालता अनन्त है; वह परम शान्तरस की गम्भीरता से भरपूर है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् वह जीव अपने को सदा ऐसा ही देखता है। मति-श्रुतज्ञान को अन्तर्मुख करके अन्तर में आनन्द के नाथ का उसे साक्षात्कार हुआ है। ज्ञान सीधे चैतन्यस्वभाव को स्पर्श कर, उसमें एकत्वरूप परिणमित हुआ, वहाँ नयपक्ष के समस्त विकल्पों से वह पृथक् पड़ गया और निर्विकल्प स्वानुभव के आनन्द से वह आत्मा स्वयमेव सुशोभित हो उठा। जिस प्रकार तीर्थंकरदेव का शरीर, आभूषण के बिना ही स्वयमेव सुशोभित होता है, उसी प्रकार चैतन्यतत्त्व स्वयं स्वभाव से ही, विकल्प बिना ही, ज्ञान और आनन्द द्वारा स्वयमेव शोभता है; उसकी शोभा के लिए किसी विकल्प के आभूषण की आवश्यकता नहीं है। विकल्प के लक्षण से भगवान आत्मा लक्षित नहीं होता। विकल्प से भिन्न हुआ जो

www.vitragvani.com

ज्ञान, उस ज्ञान के आभूषण द्वारा आत्मा सुशोभित होता है; उस ज्ञान लक्षण द्वारा आत्मा लक्षित होता है। ऐसी आत्मविद्या, वह सच्ची विद्या है, वह मोक्ष देनेवाली है।

अहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा भगवान हो गया, अनन्त गुण उसमें खिल उठे। सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा स्वसंवेदनज्ञान में प्रत्यक्ष वेदन में आता है... विकल्प का तिनका हट जाने से आनन्द का विशाल पर्वत दिखता है और उसे ऐसा वेदन होता है कि वाह रे वाह! मैंने मेरे चैतन्य भगवान को—मेरे आनन्द के समुद्र को देख लिया। विकल्प बिना आत्मा स्वयं आस्वाद में आता है; आत्मा के आनन्द का स्वाद लेने के लिये बीच में विकल्प की आवश्यकता पड़े, वैसा आत्मा नहीं है। इसलिए ऐसे आत्मा की दृष्टिवाले धर्मी जीव उस विकल्प को करता नहीं, उस विकल्प से पृथक् का पृथक् ज्ञानभावरूप रहता है; इसलिए वह ज्ञाता है किन्तु विकल्प का कर्ता नहीं। इस प्रकार ज्ञान और विकल्प के बीच कर्ता-कर्मपना छूट गया है। अब ज्ञान अपने स्वरस में ही मग्न रहता हुआ विकल्पों के मार्ग से दूर से ही पराङ्मुख हो गया है। विकल्प के काल में ज्ञान तो ज्ञानरसरूप ही रहता है, वह विकल्परूप जरा भी नहीं होता। ज्ञान को ज्ञानरस में आना, वह तो सहज है; उसमें विकल्प का बोझ नहीं है। ऐसे ज्ञानरस में आनन्द है, शान्ति है।

जिस प्रकार पानी को ढलान मिलने पर वह सहजरूप से शीघ्रता से उसमें चला जाता है; उसी प्रकार आत्मा की चैतन्यपरिणति को भेदज्ञानरूपी अन्तर में जाने का ढलान मिला, वहाँ विकल्प के वन में भटकना मिट गया और सहजरूप से अन्तर में ढलकर वह

www.vitragvani.com

अपने आनन्द समुद्र में मग्न हुआ। वहाँ उस आत्मा की चेतना में से झंकार उठती है कि

हुई रसिक मैं मेरे चैतन्य नाथ की रे,
राग का रस अब मैं नहीं करुं रे.....
लगनी लागी मेरे चैतन्यदेव के साथ,
अब राग का मदनफल नहीं बांधुं रे....

अन्तर के चैतन्य में झुका हुआ ज्ञान तो महागम्भीर है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् जीव अपने आनन्दरस के एक अंश को भी विकल्प में नहीं जाने देता। चैतन्यरस तो परम शान्त, उसे राग के आकुल रस के साथ मेल नहीं खाता। बर्फ के ढ़ेर जैसे चैतन्यरस में विकल्पों की भट्टी नहीं होती–अपने में चैतन्य की ऐसी शान्ति का स्वाद चखा, फिर दुनिया क्या बोलेगी ? निन्दा करेगी या प्रशंसा करेगी ?–यह देखने को ज्ञानी रुकता नहीं है। उसे दुनिया से प्रमाणपत्र नहीं लेना है; उसे अपने अनुभव ज्ञान द्वारा अपने आत्मा का प्रमाणपत्र मिल गया है; अपने आत्मा में से शान्ति का वेदन आ गया है, अब दूसरे को पूछना नहीं रहा। वह नि:शंक है कि अन्तर में चैतन्य के आनन्द को देखा–अनुभव किया, वही मैं हूँ, मेरी चैतन्यजाति राग के साथ मेलवाली नहीं। चैतन्य के साथ तो अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागता शोभती है; चैतन्य के साथ राग नहीं शोभता। ऐसे आत्मा की अनुभूति सम्यग्दृष्टि को होती है। अनुभूति के विशेष स्वाद द्वारा आत्मा का अद्‌भुत स्वरूप उसने साक्षात् कर लिया है। अहा! आत्मा की अनुभूति में समकिती जो अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है, उसके जैसा स्वाद जगत्

www.vitragvani.com

के किसी पदार्थ में या राग में कहीं नहीं है। ऐसी अन्तर अनुभूति द्वारा धर्मी जीव, आत्मा की सिद्धि को साधता है।

देखो! भगवान आत्मा को साधने की यह अलौकिक विधि! महाविदेह में सीमन्धर तीर्थंकर बिराज रहे हैं, वहाँ जाकर दिव्यध्वनि में से यह उत्कृष्ट माल लाकर, भगवान के आड़तियारूप से कुन्दकुन्दस्वामी भव्य जीवों को प्रदान करते हैं। इसलिए हे जीवों! तुम भगवान के इस सन्देश को आनन्द से स्वीकार करके जीवन में उतारो। अहो! चैतन्यतत्त्व तो ऐसा सरस... रागरहित शोभित हो रहा है! उसे देखकर सर्व प्रकार से प्रसन्न होओ। अन्दर चैतन्य पाताल में शान्तरस का सम्पूर्ण समुद्र भरा है; वह इतना महान है कि उसे देखते ही सर्व विकल्प टूट जाते हैं और ज्ञान की अतीन्द्रिय किरणों से जगमगाता आनन्द प्रभात खिलता है।

अहा! जिसे ऐसा महान आत्मा साधना है, उसे जगत की प्रतिकूलता कैसी? आत्मार्थी जीव, संयोग के आधार से हताश होकर बैठा नहीं रहता। वह जानता है कि बाह्य में अनन्त प्रतिकूलता के ढेर हों तो भी मेरे आनन्द का धाम महान चैतन्यतत्त्व है, वह तो मुझे अनुकूल ही है। उसमें जरा भी प्रतिकूलता नहीं। अपने आनन्दधाम में अन्दर उतरकर वह धर्मी, मोक्ष के परम सुख का अनुभव करता है। चैतन्य को जानकर स्वघर में आया, वहाँ उसके अनन्त काल के परिभ्रमण की थकान उतर गयी है।

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मसन्मुख जीव का वर्तन बाह्य में कदाचित् पहले जैसा लगे परन्तु अन्दर में तो आकाश-पाताल जैसा बड़ा अन्तर पड़ गया है। अब उसे संसार में या राग में रस

www.vitragvani.com

नहीं है; उसे अपने आत्मा में ही रस है। तीव्र पाप परिणाम अब उसे नहीं आते; उसके आहारादि भी योग्य मर्यादावाले होते हैं। विषयातीत चैतन्य की शान्ति के समक्ष अब उसे विषय-कषयों का जोर टूट गया है। चैतन्यप्राप्ति के महान उल्लास से उसका जीवन भरपूर होता है। वीतराग-वाणीरूपी समुद्र के मन्थन से जिसने शुद्धचिद्रूप रत्न प्राप्त किया है—ऐसा वह सम्यग्दृष्टि जीव, चैतन्य-प्राप्ति के परम उल्लास से कहता है कि अहो! मुझे सर्वोत्कृष्ट चैतन्यरत्न प्राप्त हुआ। सर्वज्ञ भगवान की वाणीरूपी श्रुतसमुद्र का मन्थन करके किसी भी प्रकार से / विधि से मैंने पूर्व में कभी नहीं प्राप्त किया हुआ और परमप्रिय ऐसा शुद्ध चैतन्यरत्न प्राप्त कर लिया है। चैतन्यरत्न की प्राप्ति से मेरी मति स्वच्छ हो गयी है; इसलिए मेरे चैतन्य के अतिरिक्त अन्य कोई द्रव्य मुझे मेरा भासित नहीं होता।

इस चैतन्यरत्न को जान लेने के पश्चात्, अब मुझे जगत् में मेरे चैतन्यरत्न से उत्कृष्ट दूसरा ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जो मेरे लिये रम्य हो। जगत में चैतन्य से श्रेष्ठ दूसरा कोई वाच्य नहीं, दूसरा कोई ध्येय नहीं, दूसरा कोई श्रवणयोग्य नहीं, दूसरा कोई प्राप्य नहीं, दूसरा कोई आदेय नहीं—ऐसा सर्वश्रेष्ठ चैतन्यतत्त्व मैंने प्राप्त कर लिया है। वाह! कैसा अद्भुत है मेरा चैतन्यरत्न!!

अहो! मेरा चैतन्यतत्त्व ऐसा सुन्दर, परम आनन्द से भरपूर, उसमें राग की आकुलता कैसे शोभे? सुन्दर चैतन्यभाव को मलिन राग के साथ एकता कैसे हो? जैसे सज्जन के मुँह पर माँस का लपेटा शोभा नहीं देता; उसी प्रकार सत् ऐसे चैतन्य पर, राग का लपेटा शोभा नहीं देता; चैतन्यभाव में राग का कर्तृत्व नहीं होता-

www.vitragvani.com

धर्मी ऐसी भिन्नता जानता है; इसलिए अपने चैतन्यभाव में राग के किसी अंश को वह मिलाता नहीं है।

सुख चैतन्यस्वभाव में है, उसे जाने / अनुभव करे तो ही चैतन्यसुख का स्वाद आवे और तभी रागादि का कर्तृत्व छूटे। सम्यग्दृष्टि की दशा ऐसी होती है। जो राग का कर्ता होगा, वह रागरहित चैतन्य का स्वाद नहीं ले सकेगा और रागरहित चैतन्य का स्वाद जिसने चखा, वह कभी राग का कर्ता नहीं होगा। एक सूक्ष्म विकल्प के स्वाद को भी वह ज्ञान से भिन्न ही जानता है; इसलिए कहा है कि —

करे करम सोही करतारा, जो जाने सो जाननहारा;
जाने सो करता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।

—ऐसे समकिती सन्त, जगत् में सुखिया हैं।

उन्हें नमस्कार हो। *(एक मुमुक्षु)*

इस जीव को अपने शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति से जो सन्तोष होता है, वैसा सन्तोष इस जगत में कल्पवृक्ष-चिन्तामणि-कामधेनु-अमृत या इन्द्रपद इत्यादि किसी भी पदार्थ की प्राप्ति से नहीं होता है।

www.vitragvani.com

परमात्मस्वरूप का आह्वान करता सम्यग्दर्शन प्रगट होता है

धर्मी जीव किसी भी संयोग में आत्मस्वरूप को अन्यथा नहीं मानता

[५]

सम्यग्दर्शन के लिये आत्मसन्मुख मुमुक्षु जीव के भाव विशुद्ध होते जाते हैं; आत्मस्वरूप समझानेवाले सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति उसे प्रेम जागृत होता है, धर्मात्मा को देखकर प्रमोद आता है। उसकी विचारधारा आत्मा के स्वभाव की ओर ढलती है। स्वयं अपने ज्ञायकस्वभाव की महिमा लक्ष्य में लेता है। अपने चैतन्य-स्वभावी आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के विचारों में चित्त रमने से उसे विकल्पों का रस कम होता जाता है। मैं ज्ञानस्वभावी हूँ, राग मुझसे भिन्न है-ऐसे भिन्नस्वरूप से रात-दिन विचारता है। मैं परमात्मा हूँ-ऐसे अपने स्वभाव को प्रतीति में लेकर उसकी अगाध महिमा का चिन्तवन करता है। इस प्रकार ज्ञान के बल से अपने परमात्म-स्वरूप की प्रतीति की झंकार करता हुआ जो आत्मा जागृत हुआ, उसे राग की रुचि नहीं रही; अब कहीं अटके बिना, राग से भिन्न होकर, अन्दर जाकर, परमात्मतत्त्व की अनुभूति करेगा ही।

इस प्रकार सर्वज्ञ-समान अपने पूर्ण स्वरूप को साधने के लिये जो जीव उठा, उसकी प्रतीति की झंकार छिपी नहीं रहती। जिस प्रकार रण में चढ़े हुए शूरवीर, कायरता की बातें नहीं करते, उसी प्रकार वीर के मार्ग में चैतन्य की परमात्मदशा को साधने के लिये रण में चढ़ा हुआ मुमुक्षु, राग की रुचि में नहीं रुकता; राग

www.vitragvani.com

नहीं, अल्पज्ञता नहीं; मैं पूर्णानन्द से भरपूर भगवान हूँ–ऐसे सत्स्वभाव की झंकार करता हुआ जो जागृत हुआ, उसकी शूरवीरता छुपी नहीं रहती।

'मैं परमात्मा हूँ'—ऐसे स्वसन्मुख होकर जो अपना अनुभव करता है, वही दूसरे परमात्मा को सच्चे स्वरूप से पहिचान सकता है। अपने में रागरहित परमात्मपना देखे बिना दूसरे परमात्मा के स्वरूप की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। धर्मी जीव सभी विकल्पों से भिन्न पड़कर, सर्व गुण से पूरा परमात्मा मैं हूँ–ऐसे उपयोग को अन्तर में जोड़कर आत्मा को परमात्मस्वरूप अनुभव करता है। 'मैं रागी-द्वेषी'—ऐसे स्वरूप से आत्मा को चिन्तवन करने से परमात्मपना प्रगट नहीं होता परन्तु मैं राग-द्वेषी नहीं; मैं तो चैतन्यभाव से पूर्ण परमात्मा हूँ–ऐसे आत्मा को परमात्मस्वरूप से चिन्तवन करने से परमात्मपना प्रगट होता है। वीतरागमार्ग का साधक धर्मी जीव, लोग मुझे क्या कहेंगे–यह देखने को रुकता नहीं है, लोगों में बड़े माने जानेवाले लोग या विद्वान दूसरा कहे, इससे वह शंका में नहीं पड़ता; मात्र शास्त्र के विकल्प में नहीं अटकता परन्तु शास्त्रों ने बताया हुआ विकल्पों से पार अपने चैतन्यतत्त्व को प्रतीति में लेकर अपने अन्तर में चिन्तवन करता है।

मैं सर्वज्ञस्वभाव से भरपूर भगवान हूँ–ऐसे अनुभव के जोर से वीर के पंथ में मोक्षमार्ग साधने निकला वह साधक जीव अफरगामी है, वह वापस नहीं मुड़ता। मैं विकल्प की जाति का नहीं, मैं तो सिद्ध परमात्मा की जाति का हूँ—ऐसे अपने आत्मा को सिद्धस्वरूप ध्याते हुए साधक के अन्तर में परम आनन्दरूपी अमृतधारा बहती

www.vitragvani.com

है। वचन से पार और मन के विकल्पों से भी पार, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा, वह स्वभाव का विषय है। अहा! परम अचिन्त्य उसकी महिमा है, उसे तू अन्तर में नजर करके, उसमें उपयोग जोड़कर अनुभव में ले; तेरे अन्तरस्वभाव को देखने से तू निहाल हो जायेगा। अन्तर्मुख उपयोग द्वारा परमात्मा जैसे स्वरूप को लक्ष्य में लेकर धर्मी उसका चिन्तवन करता है; उस चिन्तवन में परम आनन्द का उत्पाद होता है और विकल्पों के कोलाहल का व्यय होता है। विकल्परहित आत्मस्वरूप है, वह विकल्प से अनुभव में नहीं आता। ऐसे विकल्पातीत परमात्मस्वभाव को साधने जो जीव जागृत हुआ, उस साधक की रुचि की झंकार कोई अलग ही प्रकार की होती है। राग की जाति से उसकी जाति अलग है।

सम्यक्त्व के लिये प्रयत्नशील जीव का वर्तन कोई अलग ही प्रकार का होता है; उसके परिणाम शान्त होते हैं; धर्म सम्बन्धी बहुत नम्रता होती है, उसे कोई हठाग्रह नहीं होता, लोक भय नहीं होता, या लोकरंजन के लिये उसका जीवन नहीं होता; उसकी बाह्य वृत्तियाँ बहुत नरम हो जाती हैं। शान्तभाव और आत्मा की गहरी विचारणापूर्वक, आत्मा कैसे सधे—उसकी धुन में वह वर्तता है।

सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मा के भाव निर्मल होते हैं, उसके परिणाम अपने स्वभाव में गहराई में उतरे होते हैं। मैं पर से भिन्न, राग मेरा स्वभाव नहीं; ज्ञाता-दृष्टाभावरूप मैं हूँ - ऐसा निजस्वभाव का भान उसे वर्तता है। वह आत्मा जानता है कि मैं ज्ञान और आनन्दस्वरूप से शाश्वत् हूँ; इस जड़ शरीर के नाश से मेरा नाश

www.vitragvani.com

नहीं है, तथा देह के साथ आत्मा को एकता का सम्बन्ध नहीं है; शरीर, आत्मा से छूट जाता है परन्तु ज्ञान कभी आत्मा से भिन्न नहीं पड़ता तथा राग छूटने पर भी आत्मा ऐसा का ऐसा रहता है परन्तु ज्ञान के बिना आत्मा कभी नहीं होता-ऐसे ज्ञानस्वरूप ही वह अपने को अनुभव करता है; इसलिए मरण इत्यादि सम्बन्धी सात भय उसे नहीं होते। देह छूटने का समय आने पर 'मैं मर जाऊँगा'— ऐसा भय या शंका उसे नहीं होती। वह जानता है कि असंख्य प्रदेशी मेरा चैतन्यशरीर अविनाशी है, उसका कभी नाश नहीं होता। ज्ञानी या अज्ञानी दोनों की देह तो छूटती ही है, परन्तु ज्ञानी ने देह को भिन्न जाना है, इसलिए उसे चैतन्य के लक्ष्य से देह छूट जाती है, इसलिए उसे समाधिमरण है; अज्ञानी को आत्मा को भूलकर देहबुद्धिपूर्वक देह छूटती है, इसलिए उसे असमाधि ही है।

चाहे जैसी प्रतिकूलता में भी 'मैं स्वयंसिद्ध चिदानन्दस्वभावी परमात्मा हूँ'—ऐसी निजात्मा की अन्तरप्रतीति धर्मी को कभी नहीं हटती। आत्मस्वभाव की ऐसी प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि को अतीन्द्रिय आत्मसुख का स्वाद आ गया है; इसलिए बाह्य विषयों के सुख-जो कि आत्मा के स्वभाव से प्रतिकूल है-उसमें उसे रस नहीं आता। धर्मी कदाचित् गृहस्थ हो, राजा हो, तथापि चैतन्यसुख के स्वाद से विपरीत ऐसे विषयसुखों में उसे रस नहीं है; अन्तर के चैतन्यसुख की गटागटी के समक्ष विषयसुखों की आकुलता उसे विष जैसी लगती है। इसलिये वह तो 'सदननिवासी तदपि उदासी' है।

सम्यग्दर्शन के बिना चाहे जितना जानपना या चाहे जैसे शुभ

www.vitragvani.com

आचरण, वे कोई सम्यग्ज्ञान आ सम्यक्चारित्र नहीं कहलाते; इसलिए वे मिथ्या हैं। अत: सम्यग्दर्शन ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का बीज है। राग से और बाहर के जानपने से सम्यग्दर्शन की जाति ही अलग है। सम्यग्दर्शन स्वयं सविकल्प और निर्विकल्प – ऐसे दो भेदवाला नहीं है। सम्यक्त्व तो विकल्प से पार शुद्धात्मश्रद्धानरूप ही वर्तता है, वह कभी विकल्प को स्पर्श नहीं करता। सविकल्पदशा के काल में भी धर्मी का सम्यक्त्व तो विकल्परहित ही है।

जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है और उस प्रकार से सम्पूर्ण स्वरूप का जो साधक हुआ है, वह किसी भी संयोग में भय से, लज्जा से या लालच से किसी भी प्रकार से असत् को पोषण देता ही नहीं। इसके लिये कदाचित् देह छूटने तक की प्रतिकूलता आ पड़े तो भी वह सत् से च्युत होता ही नहीं; आत्मस्वरूप को अन्यथा नहीं मानता और असत् का आदर नहीं करता। इस प्रकार स्वरूप के साधक नि:शंक और निडर होते हैं। सत्स्वरूप की श्रद्धा के जोर में और आत्मा की परम महिमा के समक्ष उसे कोई प्रतिकूलता है ही नहीं। यदि सत् से च्युत हो तो उसे प्रतिकूलता आयी कहलाये, परन्तु प्रतिक्षण जो सत् में विशेष दृढ़ता कर रहा है, उसे तो अपने अपरिमित पुरुषार्थ के समक्ष जगत् में कोई भी प्रतिकूलता नहीं है। वह तो अपने परिपूर्ण सत्स्वरूप के साथ अभेद हो गया, उसमें से उसे डिगाने को जगत् में कौन समर्थ है? अहो! ऐसे सम्यग्दृष्टि को धन्य है... धन्य है।

सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञायकस्वभाव को ही स्वतत्त्वरूप से अनुभव

www.vitragvani.com

करता हुआ उसका विस्तार करता है, और उसे अपनी पर्याय में प्रसिद्ध करता है। उसे आत्मशुद्धि की वृद्धि होती है, अशुद्धता की हानि होती है और कर्म छूटते जाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव का आत्मा शान्तरस का समुद्र है। जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ ज्ञान दूज उदित हुई, वह बढ़कर केवलज्ञान-पूर्णिमारूप से अनन्त कला से खिल उठेगी।

सम्यग्दर्शन होने पर धर्मी जीव अपने आत्मा को ऐसा अनुभव करता है कि —

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख, कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
'मैं हूँ वही', यह चिन्तवन, होता निरन्तर ज्ञानी को॥

निजभाव को छोड़े नहीं, किञ्चित् ग्रहे परभाव नहीं।
देखे व जाने 'मैं वही', ज्ञानी करे चिन्तन यही॥

दृग्-ज्ञान लक्षण और शाश्वत्, मात्र आत्मा मम अरे!।
अरु शेष सब संयोग लक्षित, भाव मुझसे हैं परे॥

ज्ञान-दर्शन लक्षण के अतिरिक्त दूसरे जो कोई संयोगाश्रित रागादिभाव हैं, वे मुझसे बाह्य हैं; मुझमें वे नहीं और उनमें मैं नहीं; मैं उनसे भिन्न शुद्धज्ञान-दर्शनमय हूँ; मेरा ज्ञान-दर्शन लक्षण शाश्वत् है और राग-द्वेषादि तो क्षणिक संयोगाश्रित भाव हैं, वे कहीं मेरे आत्म में से उत्पन्न हुए नहीं हैं; इसलिए वे मैं नहीं हूँ। सम्यग्दर्शन होने पर मेरे स्वरस का अपूर्व आनन्द अनुभव में आया, आत्मा की सहज शान्ति प्रगट हुई, आनन्द के समुद्र में आत्मा मग्न हुआ, अन्दर में आत्मशान्ति का अद्भुत-अपूर्व-अचिन्त्य वेदन हुआ, अन्तर में सुखमय अनन्त भावों के वेदने से सम्यग्दर्शन भरपूर है।

www.vitragvani.com

मैं भगवान आत्मा हूँ – ऐसा जो निर्विकल्प शान्तरसरूप अनुभव में आता है, वही सम्यग्दर्शन है। स्वानुभूति के अनेक भावों से उल्लसित शान्तरस का समुद्र आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शनस्वरूप है।

परभावों से भिन्न और निजस्वभावों से परिपूर्ण ऐसे आत्मा को अनुभव में लेता हुआ सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। ऐसे पूर्ण शुद्ध आत्मा को अनुभव में देखते ही समस्त विकल्पजाल विलय को प्राप्त होते हैं, अर्थात् ज्ञानपर्याय अन्तर्मुख लीन होकर अभेदरूप आत्मा को अनुभव करती है। सम्यग्दर्शन होते समय अनुभव में आया हुआ अचिन्त्य चेतनतत्त्व, धर्मी जीव की प्रतीति में से कभी नहीं छूटता; उसी तत्त्व की प्रतीतिपूर्वक आगे बढ़ते-बढ़ते वह परमात्मा होता है।

— ऐसी परमात्मदशा का कारण सम्यग्दर्शन जयवन्त वर्तो! ●

(एक मुमुक्ष)

ज्ञान जगत का सिरताज है; ज्ञान आनन्द का धाम है।

ज्ञान की अचिन्त्य महानता के समक्ष रागादि परभावों का कोई जोर नहीं चलता; ज्ञान से वे सर्व परभाव भिन्न ही रहते हैं। ज्ञान तो किसी परभाव से न दबे, ऐसा महान है। हे जीव! ऐसे ज्ञानरूप ही तू अपने को चिन्तवन कर।

www.vitragvani.com

सच्ची शान्ति की शोध में

[६]

जैसे प्यासे जीव को पानी पीने से पहले भी सरोवर के किनारे आने पर पानी की शीतलता का वेदन होता है... उसी प्रकार सम्यक्त्वसन्मुख जीव, शान्ति के समुद्र के किनारे आया हुआ है... उसे क्या होता है ? उसका यह वर्णन है।

सम्यग्दर्शन होने से पहले आत्मसन्मुख जीव का वर्तन तथा विचारधारा किस प्रकार की होती है ? तथा समयग्दर्शन होने के बाद उसका वर्तन और विचारधारा किस प्रकार की होती है ?— इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम बात यह है कि 'वास्तव में सम्यग्दृष्टि ही सम्यग्दृष्टि के अन्तर को जान सकता है।' सम्यक्त्व के पिपासु जीव उसे पहिचानने के लिये प्रयत्न करते हैं और वैसी दशा की भावना भाते हैं। उनकी पहिचान, भेदज्ञान का कारण है।

जीव अनन्त काल से दु:खी हो रहा है; वह दु:ख, पर के कारण नहीं परन्तु अपने स्वभाव को भूलकर परभाव से वह दु:खी हो रहा है - इस प्रकार जिसे अन्तर में दु:ख का वेदन लगता है, वह सुख प्राप्ति का पुरुषार्थ करता है। उसे किसी न किसी प्रकार से सत् देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त मिल जाता है और उनके बताये हुये मार्ग को वह जीव उत्साह से आदरता है। वह आत्मसन्मुख जीव मात्र बाह्य निमित्त में नहीं अटकता परन्तु वह गुरुवाणी, शास्त्र-स्वाध्याय इत्यादि द्वारा अन्तर में सुख-प्राप्ति का मार्ग खोजता है। जैसे-जैसे मार्ग मिलता जाता है, वैसे-वैसे उसका प्रमोद

www.vitragvani.com

बढ़ता जाता है; अभी वास्तव में शान्ति नहीं मिली होने पर भी, शान्ति लगती है। जैसे प्यासे जीव को पानी मिलने से पहले भी सरोबर के किनारे आने पर पानी की ठण्डक का वेदन होता है; उसी प्रकार सम्यक्त्वसन्मुख जीव, शान्ति के समुद्र के किनारे आया हुआ है, उसे उस प्रकार की शान्ति अपने में दिखती है। जैसे-जैसे चैतन्य की महिमा भासित होती जाती है, वैसे-वैसे जगत के पदार्थों के प्रति वह उदासीन होता जाता है। मुझे इस जगत से कुछ काम नहीं और मैं भी इस जगत को कुछ कर दूँ - ऐसा नहीं। इस जगत के लिये मैं, और मेरे लिये यह जगत् कुछ भी कार्यकारी नहीं है-ऐसे वैराग्य-विचार द्वारा पर से भिन्नता जानकर वह अपने आत्मा को साधने की ओर ढलता है।

आत्मा का स्वरूप क्या, लक्षण क्या और कार्य क्या-यह मुमुक्षु जीव निर्णय करता है। मेरे आत्मा के आश्रय से ही मुझे सुख होगा - ऐसा उसे ख्याल में आता है। तत्पश्चात् वह चिन्तन-मनन द्वारा गुरु-उपदेश के साथ अपने विचारों की तुलना करता है; उपदेशानुसार वस्तु उसे अपने में भासित होती जाती है। ज्ञानादि स्वगुणों से पूरा और अन्य सर्व पदार्थों से भिन्न, कर्म-नोकर्म से पृथक्, रागादि विकारीभावों से भी भिन्न जाति का ऐसा आत्मस्वभाव, शुद्ध चैतन्य -आनन्दकारी अनन्त चैतन्य लक्ष्मीवान मैं ही हूँ—ऐसे निजस्वरूप का निर्णय करके उसमें गहरा उतरता जाता है।

—ऐसे जीव की विचारधारा प्रतिक्षण आत्मसन्मुख होती जाती है। शास्त्रवाँचन, गुरु-उपदेश तथा अन्तर में अपने ज्ञान-विचार के उद्यम द्वारा उसे अपना सम्यग्दर्शनरूपी कार्य करने का अत्यन्त ही

www.vitragvani.com

हर्ष और उत्साह है। स्व-कार्य साधने के लिये वह उत्साहपूर्वक प्रयत्न करता है, उसमें प्रमाद नहीं करता। तत्त्वविचार के उद्यम द्वारा उसे स्व-पर की स्पष्ट भिन्नता भासित होती है और स्व-संवेदनपूर्वक केवल अपने ज्ञानमय आत्मा में ही 'यह मैं हूँ' ऐसी अहंबुद्धि हो, तब वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है। पहले जैसे शरीर में मिथ्या अहंबुद्धि थी कि 'मनुष्यादि मैं ही हूँ', वैसे अब देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा में स्वानुभवपूर्वक ऐसी सम्यक् अहंबुद्धि हुई कि 'यह चैतन्यरूप अनुभव में आता हुआ आत्मा ही मैं हूँ।' सम्यग्दर्शन होने पर, अन्तर में ज्ञान की अनुभूतिपूर्वक आत्मा के आनन्द का वेदन हो जाता है। जब तक ऐसा अनुभव न हो, तब तक गहरे तत्त्वविचार का उद्यम किया ही करे-यह जीव का कर्तव्य है और वहाँ कर्म के स्थिति-अनुभाग इत्यादि में भी सम्यक् होने के योग्य फेरफार स्वयमेव हो जाता है।

देह से भिन्न चैतन्यमय मेरा अस्तित्व-वस्तुत्व इत्यादि अनन्त शक्तियाँ मुझमें रही हुई हैं; ज्ञान-आनन्दरूप परिणमन करना, वह मेरा स्वभाव है। जड़ के किसी भी परिणामरूप मैं नहीं होता, इसलिए मैं उसका कुछ नहीं कर सकता। ऐसी विचारधारा से पर के प्रति रस उड़ जाता है और चैतन्य की तरफ का रस बढ़ता जाता है। मैं असंख्य प्रदेशी एक अखण्ड पदार्थ हूँ और मुझे दर्शन-ज्ञान-आनन्द इत्यादि अनन्त गुण सर्व प्रदेश में ओतप्रोत होकर रहे हुए हैं, वे ही श्रद्धा-ज्ञान-सुख पर्यायरूप होते हैं। उनका कर्ता आत्मा ही है-ऐसे आत्मा के स्वभाव को जानता है और उसके ध्यान का अभ्यास करता है। ऐसे अभ्यास द्वारा वह सम्यक्त्वसन्मुख जीव थोड़े काल में सम्यग्दर्शन पाता है; कोई-कोई इस भव में ही पाते

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

हैं; अथवा इस भव के संस्कार लेकर जहाँ जाये वहाँ पाते हैं। नरक-तिर्यंच में भी कोई जीव पूर्व के संस्कार जागृत करके सम्यक्त्व पा जाता है। मूल तो अन्तर में स्वरूपसन्मुख होने का अभ्यास ही सम्यग्दर्शन का कारण है।

शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान में किसी समय ही होता है और थोड़े ही काल रहता है परन्तु उसे जो शुद्धात्मप्रतीति हुई है, वह तो निरन्तर चालू ही रहती है। शुद्धोपयोग के अतिरिक्त काल में आत्मप्रतीतिपूर्वक स्वाध्याय-मनन-जिनपूजा-गुरुसेवा इत्यादि शुभप्रवृत्ति में वर्तता है तथा गृह सम्बन्धी व्यापारादि कार्यों में भी वर्तता है परन्तु उसकी दृष्टि में आया हुआ आत्मतत्त्व तो उस समस्त राग से पृथक् का पृथक् ही रहता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के लिये उद्यमी जीव सच्ची धगश से उसके प्रयत्न में लगा रहता है। कदाचित् सम्यग्दर्शन जल्दी न हो तो अधिक से अधिक प्रयत्न करता है, परन्तु उसमें थकता नहीं है तथा आकुल-व्याकुल बनकर प्रयत्न छोड़ नहीं देता परन्तु धीरज से, उत्साह से अपना महान कार्य साधने का उद्यम किया करता है और उसे साधकर ही रहता है।

सम्यग्दर्शन होने पर, देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची पहिचान हुई होने से, उनकी उपासना में परम प्रमोद और भक्ति आती है। साधर्मी के प्रति गहरा वात्सल्य, धर्म प्रभावना और दानादि भी करता है। चैतन्यतत्त्व की गम्भीर महिमा का बारम्बार परम प्रेमपूर्वक गहरा घोलन करने से उसे आनन्द होता है, उसमें जितने राग के अंश हैं, उन्हें रागरूप ही गिनकर, ज्ञान से भिन्न जानता है और इस कारण उनका कर्ता नहीं बनकर, ज्ञायकभावरूप ही रहता है।

www.vitragvani.com

जैसे राजा इत्यादि पुण्यवन्त पुरुष जहाँ पधारें, वह घर तो सुन्दर होता है और उसका आँगन भी साफ होता है; इसी प्रकार तीन लोक में श्रेष्ठ ऐसे सम्यग्दर्शन राजा जिसके अन्तर में पधारे, उसके अन्तर में स्वघर की शुद्धता की क्या बात! उसमें तो शुद्ध चैतन्य परमात्मा विराज रहे हैं और उनका आँगन अर्थात् बाह्य व्यवहार भी चुस्त होता है; सम्यग्दृष्टि के शुभपरिणाम भी दूसरों से अलग जाति के होते हैं। तीव्र कलुषता का उसे अभाव होता है।

जैसे बालक को शक्कर का स्वाद मीठा लगने से उसे बारम्बार शक्कर खाने की इच्छा होती है; इसी प्रकार सम्यग्दर्शन द्वारा एक बार चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का मीठा स्वाद चखने के पश्चात् धर्मी को बारम्बार वह आनन्द अनुभव करने का मन होता है; वह अपने उपयोग को बारम्बार आत्मसन्मुख झुकाना चाहता है। आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं उसका चित्त स्थिर नहीं होता। सहजानन्दी ज्ञायक आत्मा की रमणता में मस्त रहने के अतिरिक्त दूसरी कोई आकाँक्षा उसे नहीं है। संसार के बाह्य विषयों में या परभाव में उसे चैन नहीं पड़ता। ज्ञान समुद्र में से आत्मज्ञान का अमृत पिया, उसे ही अधिक से अधिक पीने की पिपासा है। अन्तर में ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान..., आनन्द... आनन्द... आनन्द... ही मेरा स्वरूप है, वही मैं हूँ—ऐसी झंकार बजा करती है। राग और विकल्प आवे तो उसे हमेशा ज्ञान से बाहर ही रखता है। उसे विकल्प का वेदन दुःखरूप लगता है। विकल्पों को अपना स्वरूप नहीं मानता; इसलिए उन विकल्पों से हटकर अपनी शान्त चेतना का आश्रय लेता है।

— बाहर में व्यापार-धन्धा इत्यादि करता हुआ ज्ञात होता है,

www.vitragvani.com

अशुभराग भी होता है, तथापि उस समय स्वतत्त्व को उन सबसे भिन्न ज्ञायकभावरूप ही जानता है। परिवार और समाज के बीच रहता हुआ दिखने पर भी, वह समाज या परिवार के साथ आत्महित का सम्बन्ध किंचित भी नहीं मानता। अरे! जहाँ पुण्य की भी रुचि नहीं, वहाँ अन्य की क्या बात! बाहर में भले पुण्यसामग्री के ढेर हों या किसी कारणवश महाप्रतिकूलता आ पड़े, तथापि दोनों से पार अन्दर की चैतन्य शान्ति छूटती नहीं है। वह जानता है कि जगत का कोई पदार्थ मेरी शान्ति का दातार या हनन करनेवाला नहीं है। मेरे सुख का वेदन मुझे अन्तर में से आया है; वह किसी संयोग में नहीं छूटेगा क्योंकि वह शान्ति का वेदन कहीं बाहर से नहीं आया। जितनी बाह्य वृत्ति जाती है, उतना दु:ख है। इस प्रकार दु:ख को दु:खरूप जानता है और उससे भिन्न अन्तर आत्मा को पकड़कर उसके आश्रय से अन्तर में आनन्द-सुख का स्वाद भी लिया ही करता है।

— ऐसी अपूर्व अन्तरदशासहित उत्तम विचारधारा तथा उत्तम वर्तन सम्यग्दृष्टि जीवों का होता है.... उनका जीवन धन्य है।●

(एक मुमुक्षु)

www.vitragvani.com

सम्यक्त्वसन्मुख जीव की अद्भुत दशा

प्रभात हुआ है... अभी जलहलता सूर्योदय होगा

[७]

आहा...हा...! अभी जहाँ जलहलता सूर्य का प्रकाश नहीं हुआ परन्तु प्रातः काल की भोर हुई है, दिशायें खुल गयी हैं और अभी ही अन्धकार के बादल को भेदकर सूर्य का प्रकाश दसों दिशाओं को प्रकाशित करेगा-उस दशा की क्या बात! सम्यग्दर्शन वस्तु ही इतनी अलौकिक और गूढ़ातार्थ भाववाली है कि उसका वर्णन क्या करना और क्या न करना!! उसके गम्भीर भाव घूटते रहते हैं। सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य अभी उदित नहीं हुआ है परन्तु उसके सन्मुख हुए जीव का वर्तन अन्य मिथ्यात्वी जीवों से बहुत अलौकिक होता है; उस जीव को आत्मा के प्रेम के साथ सरलता, कषाय की मन्दता, मोक्ष-अभिलाषा, सच्चे देव -गुरु-शास्त्र के प्रति अनन्य भाव, इत्यादि भाव दूसरों से अलग प्रकार के होते हैं।—

कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष
भव में खेद अन्तरदया, वहाँ आत्मार्थ निवास।

—श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस गाथा में आत्मार्थी जीव की दशा बतायी है। उसे परिणाम में इतनी अधिक मन्दता-शान्तपना -गम्भीरता होती है कि वह अन्दर ही अन्दर उतरता जाता है। कषाय का उग्रपना उसे नहीं आ जाता। एकदम शान्ति और धीरजता से वह मूलमार्ग पर कदम बढ़ा रहा है। इस कारण परिणाम में चपलता बहुत कम होती है-कभी हो जाती है तो भी भाव की

www.vitragvani.com

विशुद्धता द्वारा तुरन्त वापस मुड़ जाता है। वह अभी व्यापार इत्यादि सम्बन्धी कार्यों में जुड़ा हुआ होने पर भी, उसके भाव दूसरे जीवों से अलग होते हैं। किसी भी बाहर के विषय में या कौतुहल में उसकी वृत्तियाँ उछाला नहीं मारती, क्योंकि बाहर के विषयों के प्रति जो लोलुपता या तीव्रता थी, वह अब चैतन्य प्रेम द्वारा अन्दर के मार्ग में चढ़ने से बहुत घट गयी है। संसार की या संसार के संयोगों की अभिलाषा छूटकर महा आनन्दरूप मोक्ष की अभिलाषा मुख्य हो गयी है। मोक्ष अर्थात् आत्मा का सम्पूर्ण सुख; उसकी ही भावना रहा करती है। ऐसा ही हुआ करता है कि बाहर में अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। अनन्त काल बाहर के भाव किये परन्तु मुझे जरा भी सुख नहीं मिला, मुझे तो मेरा सच्चा सुख चाहिए है क्योंकि अपूर्व सुख मिले और अनादि का दु:ख कैसे मिटे ?-इसका ही विचार मुझे करना है। अनन्त काल से भवभ्रमण में भटक-भटककर मैंने अनन्त दु:ख भोगे हैं; अब मैं थका हूँ, उकताया हूँ, अब यह दु:खी संसार या इसके कारणरूप परभाव मुझे नहीं चाहिए, परन्तु सच्चा मोक्षसुख ही चाहिए। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के सच्चे भाव की श्रेणी में चढ़ने पर उस मुमुक्षु जीव के वर्तन में जगत के जीवों से सहज अन्तर पड़ जाता है।

उस आत्मसन्मुख जीव को प्रथम सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अनन्य बहुमान-भक्ति और अर्पणता के इतने तीव्र भाव होते हैं कि अन्य मिथ्यादृष्टि जीव करोड़ों की सम्पत्ति अर्पण करे, तथापि यह जीव जैसी अर्पणता के भाव नहीं ला सकता। परम महिमावन्त चैतन्यतत्त्व बतलानेवाले देव-गुरु के प्रति उसे नि:शंकता आ गयी है; इसलिए उनसे चैतन्य का जो उपदेश सुनने को मिलता

www.vitragvani.com

है, वह देशना अन्दर उतरते हुए ज्ञान में आर-पार उतरकर अपना कार्य कर लेती है।

जीवादि छह द्रव्य तथा नवतत्त्व की यथार्थता और स्वतन्त्रता उस जीव के विचार में ऐसी बैठ गयी है कि उसमें कहीं घोटाला उत्पन्न नहीं होता; इसलिए एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य के साथ मिलावट नहीं करता। अभी सम्यक् परिणमन न हुआ होने पर भी, विचार में स्वतन्त्रता भलीभाँति समझ में आ गयी है और पर से भिन्नता के भाव की दृढ़ता बढ़ती जाती है, चैतन्य का प्रेम बढ़ता जाता है। इस प्रकार भेदज्ञान का भाव जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे आकुलता कम होती जाती है और शान्ति-धीरज बढ़ते ही जाते हैं। वह ऐसा विचार करता है कि अरे! बाहर में या शरीर में मेरा चाहा नहीं होता और हो तो भी मुझे क्या? वे मुझसे भिन्न हैं; फिर किसलिए मुझे उनके प्रति कर्तापने का मिथ्यात्वभाव कर-करके दु:खी होना?-मैं तो ज्ञान हूँ; इस प्रकार विचारकर अकर्ता स्वभाव के सन्मुख अर्थात् ज्ञातास्वभाव के सन्मुख होने का विशेष प्रयत्न और पुरुषार्थ बढ़ाता जाता है।

नवतत्त्व सम्बन्धी विचार में उसे प्रत्येक तत्त्व का ज्ञान इतना अधिक स्पष्ट और दृढ़ हो गया है कि उसमें अब भूल नहीं होती; मूल दो तत्त्व, और बाकी के पर्यायरूप सात तत्त्व, इनका यथावत् ज्ञान वर्तता है। शुभ-अशुभभावों का किस तत्त्व में समावेश होता है और धर्मदशा का किस तत्त्व में समावेश होता है, इसकी भिन्नता को भलीभाँति जानता है और अपने मूलतत्त्व को ज्ञान में नितार लेता है। मैं स्वयं शुद्ध जीवतत्त्व उपादेयरूप कैसा हूँ? कितना

www.vitragvani.com

महान हूँ? कैसा मेरा कार्य है? —ऐसे अपने आत्मा सम्बन्धी अनेक प्रकार के विचार में ज्ञान को विस्तरित करता है। जैसे-जैसे विचारधारा विस्तरित करता जाता है, वैसे-वैसे ज्ञान की दृढ़ता बढ़ती जाती है और विकल्प की ओर का जोर टूटता जाता है तथा निर्णय में अस्तिरूप ज्ञानस्वभाव की ओर का जोर बढ़ता जाता है और अधिक से अधिक स्पष्ट भावभासन होता जाता है कि अहा! ऐसा चैतन्यतत्त्व मैं ही हूँ। अनन्त गुणों के पिण्डरूप एक स्वरूप चैतन्यमय ही मैं हूँ; मैं मात्र चेतना-चेतनामय ही हूँ। मेरी चेतना में आनन्द इत्यादि अनन्त स्वभाव समाहित होते हैं, परन्तु रागादि कोई परभाव उसमें समाहित नहीं होते; वे तो चेतना से भिन्न ही स्वरूपवाले हैं, एक स्वरूप नहीं। ऐसे विचार द्वारा भेदज्ञान की दृढ़ता होती जाती है।

पहले तो विचार में गुण-पर्याय के विचार आते थे, तथा 'मैं ऐसा नहीं अर्थात् रागवाला, शरीरवाला कर्मवाला या भेदवाला मैं नहीं'-ऐसे नास्ति के विचार आते थे परन्तु अब तो वे विचार गौण होकर अस्ति स्वभाव के विचार की ही मुख्यता वर्तती है-अर्थात् 'ऐसा स्वभाव हूँ'—ऐसी गम्भीर महिमापूर्वक स्वसन्मुख होता जाता है और उस स्वभाव का साक्षात् वेदन करने के लिये वह जीव ऐसा ओतप्रोत बन जाता है कि उसे कहीं चैन नहीं पड़ता, अन्यत्र कहीं बाहर में लक्ष्य स्थिर नहीं होता। सूक्ष्म विकल्प भी छूटते जाते हैं और ज्ञान अधिक से अधिक गम्भीर होता जाता है। आत्मा के चिन्तन की धुन में उपयोग ऐसा सूक्ष्म होता जाता है कि बाहर में तो कहीं रुचता नहीं, परन्तु अन्दर सूक्ष्म विकल्प रहें, उनमें भी चैन नहीं पड़ता, उनसे छूटकर अन्तर के स्वभाव में

www.vitragvani.com

एकमेक होने के लिये उपयोग बारम्बार अन्दर उतरना चाहता है। आहा...हा...! ऐसे ज्ञानानन्दस्वभाव की अपूर्व महिमा लाकर उसके चिन्तन की धुन में उस जीव को अन्तर में शान्ति और अनाकुलता बढ़ती जाती है।

जिस प्रकार स्वर्ण की शुद्धता करने के लिये उसे अग्नि में तपाया जाता है, और वह सोना ज्यों-त्यों तपता जाता है, त्यों-त्यों उसकी शुद्धता और पीलापन इत्यादि बढ़ते जाते हैं; इसी प्रकार यह जिज्ञासु जीव भी ज्ञान और राग की भिन्नता के विचाररूपी ताप में तपते-तपते शुद्धता की ओर आगे बढ़ता जाता है; अब श्रद्धा की शुद्धता होने में देरी नहीं है। आहा...हा...! ऐसे विचार की और निर्णय की अपूर्व भूमिका में आने पर उस मुमुक्षु को बाह्य चेष्टायें भी शान्त-गम्भीर और स्थिर होती जाती हैं। सम्यग्दर्शनरूपी सूर्योदय से पहले स्वसन्मुख विचारधारा आना, वह भी बलिहारी है; और ऐसी विचारधारा के अन्ततः परिणाम अन्तर में एकाग्र होने से आनन्द के वेदनसहित सम्यग्दर्शन का प्रकाश होता है।

—धन्य वह दशा... धन्य वह वेदन—

अहा! ऐसे अपूर्व सम्यग्दर्शन होने के बाद के वर्तन और विचारधारा का क्या कहना? जहाँ सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य अनन्त चैतन्य किरणों सहित प्रकाशित हो रहा है, उस अपूर्व दशा की अपूर्वता का वर्णन वाणी में तो कितना किया जा सकता है? श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है कि 'देह छंता जैनी दशा वर्ते देहातीत'— सम्यग्दर्शन भी देहातीत दशा है। उसमें देहभाव छूटकर अपूर्व आत्मभाव जागृत हुआ है। अहो! ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई,

www.vitragvani.com

उनका बाह्य वर्तन भी उत्तम और ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न होता है। उस ज्ञानी जीव को जहाँ आत्मा के दर्शन हुए और मैं चैतन्यमय आत्मा ही हूँ; अन्य कुछ मैं नहीं हूँ—ऐसा निर्विकल्प भेदज्ञान द्वारा निर्णय किया, वहाँ उसे सर्व जीवों के प्रति समभावरूप ऐसी दृष्टि हो गयी है कि मेरी तरह जगत के सर्व जीव भी ज्ञानस्वरूपी भगवान हैं- इस प्रकार सर्व जीवों में आत्मवत् बुद्धि के कारण उसे किसी के प्रति राग-द्वेष का अभिप्राय नहीं रहा; इसलिए राग-द्वेष अत्यन्त ही मन्द पड़ गये हैं और जगत् के प्रति सहज उदासीनभाव आ गया है। बाह्य संयोगों की अपेक्षा कदाचित् उसे बहुत निर्धनता हो, रोगादि हो, बाहर में अपमान होता हो, तथापि अन्तर में चैतन्य के अनन्त-अनन्त वैभव से भरपूर अपने आत्मा की महत्ता स्वयं साक्षात् जानता होने से उसे दीनता नहीं होती; बाह्य वस्तु की आकांक्षा की मुख्यता कभी भी नहीं होती। मन में ऐसा विकल्प भी नहीं आता कि मुझे परवस्तु मिले तो मैं सुखी होऊँ। प्रति समय भेदज्ञानधारा चालू ही होने से आत्मस्वभाव की परम गम्भीर महिमा के समक्ष उसे बाहर की कोई वस्तु महिमावन्त नहीं लगती। चैतन्य की अकषाय शान्ति के वेदनपूर्वक अनन्तानुबन्धी कषायभाव का अभाव हो गया है; इस कारण किसी प्रसंग में कषायभाव की तीव्रता नहीं होती। आत्मशान्ति की कोई अपूर्व मस्ती वर्तती है, उसके साथ जगत के प्रति निस्पृहता-सरलता-भद्रिकता, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति बहुमान भक्ति प्रभावना और साधर्मीजनों के प्रति परम वात्सल्यता इत्यादि भाव भी होते हैं। इस प्रकार उसे अनेक गुण बाह्य और अन्तरंगरूप से खिल उठे हैं। अपनी आत्मदशा में वह निशंक है। अपने अपूर्व शान्ति के वेदन की जो दशा प्रगट

www.vitragvani.com

हुई है, उस दशा को अन्य जीव स्वीकार करें या न स्वीकारें, उसकी अपेक्षा नहीं है; अपने को तो अपने वेदनपूर्वक आराधना चल ही रही है, उसमें वह निशंक है। 'यह सच्चा होगा या नहीं'— ऐसी शंकारूपी विकल्प उसे उत्पन्न नहीं होता। बाह्य अनेक कार्यों में जुड़ता दिखाई देने पर भी, वह तो उनसे अलिप्त ही है।

अज्ञानी जीवों को ऐसा लगता है कि यह धर्मी जीव सांसारिक कार्य में जुड़ता है और क्रोधादि करता है, परन्तु वास्तव में अन्तरंग में राग से भिन्न पड़ी हुई उसकी चेतना, बाह्य एक भी कार्य में नहीं जुड़ती है तथा क्रोधादिक से भी वह भिन्न ही रहती है। स्वभाव -सन्मुख तल्लीन हुई श्रद्धा-ज्ञानादि की वीतरागपरिणति, बाहर के किसी भी विकल्प को या कार्य को अपने कार्यरूप से स्वीकार नहीं करती; इसलिए धर्मी उनका अकर्ता ही है।

एक बार निर्विकल्प शुद्धोपयोगी होकर महा आनन्द का जो अनुभव किया, पश्चात् विकल्प में आने पर भी उस विकल्प से भिन्न ज्ञान-आनन्द की परिणति में वह जीव रम रहा है। आहा...हा...! ऐसा आनन्दमय अखण्ड आत्मा मैं हूँ-एक क्षण भी उसका विस्मरण नहीं होता। भेदज्ञान की अपूर्व कला खिल गयी है। भले ज्ञानोपयोग बाहर में हो और शुभ-अशुभ परिणाम वर्तते हों, तथापि स्व-पर के विवेकरूप भेदज्ञान सदा वर्त रहा है। शुद्ध आत्मतत्त्व में एकत्व -बुद्धिरूप निर्विकल्प श्रद्धा भी वर्तती ही है और चैतन्य के वेदन का परमसुख भी आत्मा की अखण्ड आराधना में अभेदरूप से वर्त ही रहा है। ज्ञानी को ऐसी अद्भुतदशासहित की समस्त स्थिति होती है। उसकी सर्व स्थितियों में 'जगत् इष्ट नहीं आत्म से'—

www.vitragvani.com

ऐसा भाव वर्तता है क्योंकि जहाँ आत्मा में से आनन्दरस की घूँट पी हो, वहाँ जगत में दूसरा कोई इष्ट कहाँ से लगेगा ? बस ! आत्मा की धुन ऐसी लगी है कि कब उसमें विशेषरूप से लीन होऊँ ! ऐसी ही भावना घुला करती है। शुभ-अशुभ परिणाम में उपयोग जाता होने पर भी, उससे पार ज्ञानदशा जिसे निरन्तर वर्ता करती है—

उन ज्ञानी के चरण में वन्दन हो अगणित।

प्रभु का मारग है शूरवीर का

श्रीगुरु शिक्षा देते हैं कि हे भव्य ! आत्मा का अनुभव करने के लिये सावधान होना... शूरवीर होना... जगत की प्रतिकूलता देखकर कायर मत होना... प्रतिकूलता के सामने नहीं देखना, शुद्ध आत्मा के आनन्द के समक्ष देखना। शूरवीर होकर, उद्यमी होकर आनन्द का अनुभव करना 'हरि का मारग है शूरों का...' वह प्रतिकूलता में या पुण्य की मिठास में कहीं नहीं अटकता, उसे एक अपने आत्मार्थ का ही कार्य है। वह भेदज्ञान द्वारा आत्मा को बन्धन से सर्वथा प्रकार से भिन्न अनुभव करता है। ऐसा अनुभव करने का यह अवसर है। भाई ! उसमें शान्ति से तेरी चेतना को अन्तर में एकाग्र करके त्रिकाली चैतन्यप्रवाहरूप आत्मा में मग्न कर... और रागादि समस्त बन्धभावों को चेतन से भिन्न अज्ञानरूप जान। ऐसे सर्व प्रकार से भेदज्ञान करके तेरे एकरूप शुद्ध आत्मा को खोज। मोक्ष को साधने का यह अवसर है।

www.vitragvani.com

अत्यन्त प्रिय चैतन्यवस्तु की
अद्भुत महिमा चिन्तवन कर-करके
अन्ततः उसका साक्षात् अनुभव करता है
[८]

अहो! मेरी चैतन्यवस्तु की कोई अचिन्त्य-अपूर्व महिमा है; उसकी निर्विकल्प प्रतीति को किसी राग का अवलम्बन नहीं। शुभभाव पूर्व में अनन्त बार किये होने पर भी, यह चैतन्यवस्तु लक्ष्य में नहीं आयी; इसलिए उस समस्त राग से पार चैतन्यवस्तु कोई अन्तर की अद्भुत चीज़ है-जिसकी सन्मुख के विचार भी आकर शान्ति प्रदान करते हैं, तो उस वस्तु के साक्षात् वेदन की क्या बात?

जीव अनादि काल से अपने स्वरूप को भूलकर संसार में भटक रहा है। जीव को धर्म प्राप्त करने का मुख्य अवसर मनुष्यपने में है। मनुष्य होकर भी यदि जीव धर्म समझे तो ही सुखी होता है और उसका दुःख मिटता है। अरे! मनुष्यभव प्राप्त करके भी बहुत से जीव तो धर्म की जिज्ञासा भी नहीं करते। कदाचित् जिज्ञासा करे तो अनेक प्रकार के मिथ्यामार्ग में धर्म मानकर, मिथ्या मान्यता से धर्म के बहाने भी अधर्म का ही सेवन करते हैं और कुदेव-कुगुरु-कुधर्म में ही फँसे रहते हैं अथवा तो 'सभी धर्म समान हैं'-ऐसा मानकर सत्-असत् के बीच विवेक नहीं करते और उल्टे ऐसी अविवेकी बुद्धि को विशालबुद्धि मानकर वे असत् मार्ग को ही दृढ़ करते हैं। कभी महाभाग्य से जीव को सुदेव-सुगुरु और सुशास्त्र मिले तथा उनका बाह्यस्वरूप समझा, तथापि स्वयं का वास्तविक स्वरूप न समझे, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता; और

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन बिना बारम्बार वह संसार चक्र में परिभ्रमण करता है। इसलिए हे जीव! तू ऐसा विचार कि अभी सम्यग्दर्शन पाकर भव-भ्रमण के दु:ख से छूटने का महान अवसर आया है तो इस अवसर में सर्व प्रकार से जागृत होकर मैं मेरा आत्महित कर लूँ।

आत्महित के मूलकारणरूप सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के श्रद्धा-गुण की निर्विकारी शुद्धपर्याय है। अन्तर में अखण्ड आत्मतत्त्व जैसा है, वैसा लक्ष्यगत करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन को किसी विकल्प का अवलम्बन नहीं, किन्तु विकल्पातीत चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यह सम्यग्दर्शन ही आत्मा के सर्व सुख का कारण है। 'मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, बन्धरहित हूँ'—ऐसे शुभरागमय विकल्प का अवलम्बन भी सम्यग्दर्शन में नहीं है; उस शुभविकल्प को अतिक्रमण करके ज्ञान-अनुभूति द्वारा आत्मा को पकड़ने से सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है-यह यथावत जानना चाहिए। देह की किसी क्रिया से तो सम्यग्दर्शन नहीं; शुभराग से भी सम्यग्दर्शन नहीं; मैं ज्ञायक हूँ, पुण्य-पाप से भिन्न हूँ - ऐसे विचार भी सम्यग्दर्शन कराने में समर्थ नहीं है। जो विचार में अटका, वह भेद के विकल्प में अटका है; उससे आगे बढ़कर स्वरूप का सीधा अनुभव और प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है।

—ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये तैयारीवाले जीव की योग्यता भी जैसी-तैसी नहीं होती। अभी भले वह मिथ्यात्व में है, तथापि सामान्य मिथ्यादृष्टि से वह अलग है। सम्यग्दर्शन की तैयारीवाले जीव को कषायरस की अत्यन्त मन्दता तथा चैतन्य

www.vitragvani.com

-सन्मुख होने के लिये पर के प्रति वैराग्यपरिणति होती है; उसके अन्तर में चैतन्य का रस बढ़ता जाता है और राग का रस घटता जाता है। ऐसा जीव, स्वरूप प्रगट करने के लिये सत्समागम से श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का निर्णय करने की ज्ञानक्रिया करता है। उसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्म की ओर का आदर तथा उस ओर का झुकाव तो छूट ही गया है तथा विषयादि परवस्तु में सुखबुद्धि भी छूटती जाती है और चैतन्यसुख की मिठास भासित होती जाती है। इसलिए सब ओर से रुचि को हटाकर अपने स्वभावसन्मुख रुचि झुकाता है। वीतरागी देव-गुरु को भलीभाँति पहिचानकर, उनके द्वारा कथित आत्मस्वरूप का आदर करता है, उसे यह सब स्वभाव के लक्ष्य से हुआ होता है।

उसे सत्देव-गुरु की ऐसी लगन लगी है कि सत्पुरुष मेरा स्वरूप क्या कहते हैं, वह समझने का ही लक्ष्य है। अहा! अल्प काल में मोक्ष जानेवाले आत्मार्थी जीव की ही यह बात है। सभी बात की हाँ-जी-हाँ भले परन्तु अन्दर एक भी बात का अपने ज्ञान में निर्णय करे नहीं—ऐसे अनिर्णयी-डाँवाडोल जीव, आत्मा को साध नहीं सकते।

जैसे नाटक के प्रेमवाला जीव, नाटक में अपनी प्रिय वस्तु को बारम्बार देखता है, उसमें ऊँघता नहीं; वैसे ही जिस भव्य जीव को आत्मा प्रिय लगा है, आत्मा की रुचि हुई है और आत्मा का हित करने के लिये जागृत हुआ है, वह बारम्बार रुचिपूर्वक प्रत्येक समय सोते-बैठते, खाते-पीते, बोलते-चलते, पढ़ते-विचारते निरन्तर अत्यन्त प्रिय चैतन्यतत्त्व को ही देखने की ओर अनुभव करने की भावना करता है; स्वभाव की महिमा का लक्ष्य उसे एक

www.vitragvani.com

क्षण भी नहीं छूटता, उसके लिये कोई काल की या क्षेत्र की मर्यादा नहीं करता। चाहे जहाँ और चाहे जब इसी वस्तु की महिमा वर्तती है। सच्चे तत्त्व की रुचि के कारण उसे दूसरे कार्यों की प्रीति गौण हो जाती है और एक आत्मा का अनुभव करनेरूप कार्य को ही मुख्य गिनकर उसमें सर्वशक्ति को जोड़ता है। अरे! ऐसे जीव को विषय-कषाय का रस कहाँ से रहे? कुदेवादि के प्रति राग और विषय-कषायों का तीव्र अशुभराग टालकर, सच्चे देव-गुरु के प्रति भक्ति आदि का शुभराग करने का भी जिस जीव को ठिकाना नहीं, वह जीव अत्यन्त रागरहित आत्मस्वरूप का अनुभव किस प्रकार करेगा? वीतरागी चैतन्यतत्त्व की ओर ढलने के लिये उद्यमी जीव को सहज तीव्र विषय-कषाय छूटकर परिणाम एकदम शान्त होते जाते हैं।

सम्यक्त्वसन्मुख हुए उस जीव को अपनी पर्याय में पामरता भासित होती है और स्वभाव की कोई अचिन्त्य महिमा भासित होती है... वह स्वभाव को पकड़ने के लिये एकान्त में शान्तचित्त से बारम्बार अन्तर्मन्थन करता है—अहो! मेरी चैतन्यवस्तु की कोई अचिन्त्य-अपूर्व महिमा है; उसकी निर्विकल्प प्रतीति को किसी राग का अवलम्बन नहीं; शुभभाव पूर्व में अनन्त बार किये, तथापि यह चैतन्यवस्तु लक्ष्य में नहीं आयी; इसलिए उस समस्त राग से पार चैतन्यवस्तु कोई अन्तर की अद्भुत चीज़ है—कि जिसकी सन्मुख के विचार भी ऐसी शान्ति देते हैं, तो उस वस्तु के साक्षात् वेदन की क्या बात! -ऐसे अत्यन्त चाहनापूर्वक चैतन्यवस्तु को पकड़ने का उद्यमी वर्तता है... और परिणाम को शान्त करके आत्मा में एकाग्र करता है-यह सम्यग्दर्शन की पद्धति है।

www.vitragvani.com

प्रथम तो आत्मा का कल्याण करने की बुद्धि जागृत होना चाहिए कि किसी भी प्रकार मुझे मेरे आत्मा का हित करना है। इसके लिए सत्यधर्म की शोध, संसार के अशुभनिमित्तों के प्रति आसक्ति में मन्दता, ब्रह्मचर्यादि का रंग, कुदेवादि के सेवन का त्याग, सच्चे देव-गुरु-धर्म के प्रति उल्लास-भक्ति, साधर्मियों का प्रेम-आदर, सत्यधर्म की परम रुचि और आत्मा की तीव्र जिज्ञासा -ऐसे भावों की भूमिका, वह सम्यक्त्व के लिये क्षेत्रविशुद्धि है; और अन्तर में राग से भिन्न ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके बारम्बार उसका घोलन, वह सम्यक्त्व को लिये बीज है। जीवों की दया पालना इत्यादि शुभपरिणामवाले बहुत जीव होते हैं परन्तु वे सब कोई आत्मज्ञान नहीं पाते; इसलिए दया इत्यादि शुभपरिणाम, वह कोई सम्यग्दर्शन का कारण नहीं—तो हिंसा, असत्य इत्यादि पाप भावों में डूबे हुए जीवों को तो आत्महित का विचार ही कहाँ है ? भाई! आत्मा का हित तो अशुभ और शुभ समस्त राग से पार, अन्तर के ज्ञानानन्दस्वभाव के आश्रय से है।

सम्यक्त्वसन्मुख जीव जानता है कि मेरी पर्याय में राग होने पर भी, इतना ही मैं नहीं। भूतार्थस्वभाव से देखने पर रागरहित चिदानन्दस्वभाव का मुझे अनुभव होगा। जिस समय क्षणिक पर्याय में रागादि है, उस समय ही त्रिकाली स्वभाव आनन्द से परिपूर्ण है। उस स्वभाव का स्वीकार और सत्कार करने से पर्याय में भी राग और ज्ञान की भिन्नता का अनुभव होता है; वहाँ अकेला राग नहीं वेदन में आता; राग से भिन्न अतीन्द्रियज्ञान और सुख भी अनुभव में आता है। राग हो, वह अल्पदोष है; रागरहित स्वभाव का आदर होने से वह राग छूट जायेगा परन्तु राग को मोक्षमार्ग माने तो उसमें

www.vitragvani.com

वीतरागस्वभाव का अनादर होता है; इसलिए वह तो मिथ्यात्वरूप महादोष है। राग को ही मोक्षमार्ग माना तो उस राग से भिन्न पड़कर वीतरागस्वभाव को किस प्रकार साधेगा? इसलिए प्रथम, राग से अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वभाव को जानकर भेदज्ञान करना और बारम्बार अन्तर में उसकी भिन्नता का अभ्यास करना, यह मुमुक्षु का कर्तव्य है। ऐसा जीव अन्तर में चैतन्य के अनुभव का निरन्तर अभ्यास करते हुए अन्तर्मुहूर्त में अथवा अधिक से अधिक छह महीने में अवश्य आत्मा के आनन्द को प्राप्त करता है। वह जीव, जगत् की व्यर्थ पंचायत में कहीं नहीं रुकता। मेरे आत्मा को मैं कैसे देखूँ – ऐसे एक आत्मा का ही अर्थी होकर उसी की लगन द्वारा शीघ्रता से मोह छोड़कर चैतन्य-विलासी आत्मा का अनुभव करता है।

भाई! दुनिया क्या माने, और क्या करे-यह बात उसके घर रही; यह तो दुनिया की दरकार छोड़कर स्वयं अपने आत्मा का हित कर लेने की बात है। जिसे आत्मा की धुन लगे, उसका मन दुनिया में कहीं स्थिर नहीं होता। आत्मा के अनुभव बिना उसे कहीं चैन नहीं मिलती। दुनिया का रस छूटकर आत्मरस की ऐसी धुन चढ़ जाती है कि उपयोग शीघ्रता से अपने में एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन कर लेता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में जो महा आनन्द का वेदन हुआ, उसकी क्या बात! अनन्त गुण की अतीन्द्रिय शान्ति का समुद्र आत्मा के वेदन में उल्लसित होता है।

धन्य है ऐसा स्वरूप साधनेवाले जीवों को। ●

(एक मुमुक्षु)

www.vitragvani.com

जय हो सम्यग्दर्शन धर्म की!

जिसने अभी मोक्षसुख का स्वाद चखाया है

अहो, मोक्षार्थी जीवो! मोक्ष के आनन्द महल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है... ऐसे सम्यग्दर्शन को जीवन में एक क्षण भी व्यर्थ गँवाये बिना तुरन्त ही धारण करो। ऐसा अवसर बारम्बार मिलना कठिन है... इसलिए चेतो... जागृत होओ... और आत्महित के इस अवसर को उत्साह से झपट लो। सम्यग्दर्शन द्वारा तुम्हारा जीवन अचिन्त्य आनन्दरूप बन जायेगा।

सम्यग्दर्शन की बहुत महिमा बतलाकर उसकी अत्यन्त प्रेरणा प्रदान करते हुए, श्रीगुरु कहते हैं कि हे भव्य! इस सम्यग्दर्शन को पहिचानकर, अत्यन्त महिमापूर्वक तू इसे शीघ्र धारण कर... किंचित् भी काल व्यर्थ गँवाये बिना तू चेत जा और ऐसे सम्यग्दर्शन को धारण कर। क्योंकि यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का प्रथम सोपान है; ज्ञान या चारित्र कोई भी इस सम्यग्दर्शन के बिना सच्चा नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना समस्त जानपना और समस्त आचरण, वह मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण है। यदि सम्यक्त्व बिना जीवन गँवाया तो फिर से ऐसा नरभव और ऐसे जैनधर्म का उत्तम योग मिलना कठिन है। अवसर गँवा देगा तो तेरे पछतावे का पार नहीं रहेगा। इसलिए हे भव्य जीव! तू अत्यन्त सावधान होकर चेत जा और अत्यन्त उद्यमपूर्वक शीघ्र ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर।

मोक्षमहल में चढ़ने के लिए रत्नत्रयरूप जो सीढ़ी है, उसका पहला सोपान सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ

www.vitragvani.com

(श्रावकपना, मुनिपना इत्यादि) नहीं होती। सीढ़ी का एक सोपान भी जिससे नहीं चढ़ा जाता, वह पूरी सीढ़ी चढ़कर मोक्ष में कहाँ से पहुँचेगा ? सम्यग्दर्शन के बिना समस्त क्रियायें अर्थात् शुभभाव, वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है; वह तो संसार में उतरने का मार्ग है। जिसने राग को मार्ग माना, वह तो संसार के मार्ग में है। राग के मार्ग से कोई मोक्ष में नहीं जाया जाता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवसहित सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागदशा, वह मोक्षरूपी आनन्दमहल; आंशिक शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी; आंशिक शुद्धता बिना पूर्ण शुद्धता के मार्ग में कहाँ से जाया जा सकेगा ? अशुद्धता के मार्ग में चलने से कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है ?-मोक्ष वह कोई त्रिकाली द्रव्य या गुण नहीं, परन्तु वह जीव के ज्ञानादि गुणों की पूर्ण शुद्ध अवस्थारूप कार्य है; उसका पहला कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है, उस पूर्णता के ध्येय से पूर्ण के ओर की धारा शुरु होती है; बीच में रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है; वे कोई मोक्ष की सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्र इत्यादि की शुद्धि का मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग, वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है। राग का फल सम्यग्दर्शन नहीं और सम्यग्दर्शन का फल शुभराग नहीं; दोनों चीज़ें ही भिन्न हैं।

आत्मा शान्त-वीतरागस्वभाव है; वह पुण्य द्वारा-राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता, अर्थात् अनुभव में नहीं आता परन्तु

www.vitragvani.com

सीधे स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभव में आता है—ऐसा अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन हो और तब मोक्षमार्ग प्रगट हो। अनन्त जन्म-मरण के नाश के उपाय में और मोक्ष के परम आनन्द की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन ही प्रथम सोपान है। इसके बिना ज्ञान का जानपना या शुभराग की क्रियायें, वे सब निरर्थक हैं; धर्म का फल उनके द्वारा जरा भी नहीं आता, इसलिए वे निरर्थक हैं। नवतत्त्व की अकेली व्यवहारश्रद्धा, जानपना या पंच महाव्रतादि शुभ आचार वह कोई राग, आत्मा के सम्यग्दर्शन के लिये जरा भी कारणरूप नहीं हैं; विकल्प की मदद से निर्विकल्पता कभी प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्व आदि की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है, इतनी उसकी मर्यादा है परन्तु वह व्यवहार है; इसलिए उसके कारण निश्चय है-ऐसा नहीं है। व्यवहार के जितने विकल्प हैं, वे सब आकुलता और दुःख हैं; आत्मा का निश्चयरत्नत्रय ही सुखरूप / अनाकुल है। ज्ञानी को भी विकल्प, वह दुःख है। विकल्प द्वारा कहीं आत्मा का कार्य ज्ञानी को नहीं होता; उस समय ही उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि अपने आत्मा के अवलम्बन से उसे वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चयसहित जो व्यवहार होता है, वह व्यवहार, व्यवहाररूप से सच्चा है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या चारित्र में सच्चापना नहीं आता इसलिए झूठापना (मिथ्यापना) रहता है। सम्यग्दर्शन के बिना सब मिथ्या ?-हाँ, मोक्ष के लिये तो सब ही निरर्थक, धर्म के लिये सब व्यर्थ; शास्त्रज्ञान की बात करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण में न्यायों की झड़ी लगावे या व्रतादि आचरणरूप क्रियाओं द्वारा लोक में वाह-वाह हो परन्तु सम्यग्दर्शन बिना उसका

www.vitragvani.com

ज्ञान और आचरण सब ही मिथ्या है, उसमें जरा भी आत्मा का हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं, आत्मा का सुख नहीं।

व्यवहारश्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे सब सम्यग्दर्शन बिना कैसे हैं ?-तो कहते हैं कि वे **सम्यकता न लहे** अर्थात् सच्चे नहीं परन्तु खोटे हैं, उनके द्वारा मोक्षमार्ग जरा भी सधता नहीं है। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है; इसलिए वह धर्म का मूल है।

अहो! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को, हे भव्य जीवों! तुम धारण करो, बहुमान से उसकी आराधना करो। हे सुज्ञ समझु आत्मा! तू समझ, तू चेत जा, तू सावधान हो और प्रमाद किये बिना शीघ्र सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यह सम्यग्दर्शन का उत्तम अवसर है, बारम्बार ऐसा अवसर मिलना दुर्लभ है। इसलिए ऐसा उत्तम उपदेश सुनकर, एक क्षण भी गँवाये बिना अभी ही अन्तर में अपने शुद्ध आत्मा की अखण्ड अनुभूतिसहित श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन के आनन्दमय दीपक प्रगट कर। हे भव्य! हे सुख के अभिलाषी मुमुक्षु! सुख के लिये तू ऐसे उत्तम कार्य को तू शीघ्र कर—

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए।

परद्रव्य से भिन्न आत्मा की रुचि, वह सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को पहले ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिए। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ; ये शरीरादि अजीव मैं नहीं; रागादि आस्रव भी मैं नहीं-इस प्रकार देहादि तथा रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने पर सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन

www.vitragvani.com

हुआ, तब शास्त्र-पठन या संयम न हो तो भी मोक्षमार्ग शुरु हो जाता है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—

अनन्त काल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में जात्यांतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।

—ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप, जीव अनन्त काल से समझा नहीं और विकार को ही आत्मा मानकर, उसी के अनुभव में रुक गया है। बहुत तो पाप छोड़कर शुभराग में आया परन्तु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है; वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है और उसके अनुभव से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। **भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी** सभी तत्त्वों का सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शन में समाहित है। चैतन्यप्रकाशी सूर्य आत्मा है, उसकी किरणों में रागादि अन्धकार नहीं है; शुभाशुभराग, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति और अनुभूति करना, वह अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सर्व का सार है।

परमात्मप्रकाश में कहते हैं कि अनन्त काल से संसार में भटकता हुआ जीव दो वस्तुओं को प्राप्त नहीं हुआ—एक तो जिनवरस्वामी, और दूसरा सम्यक्त्व। बाहर में तो जिनवरस्वामी मिले परन्तु स्वयं उनका सच्चा स्वरूप नहीं पहिचाना; इसलिए उसे जिनवरस्वामी मिले नहीं-ऐसा कहा। जिनवर का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया, तब ज्ञान

www.vitragvani.com

सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिये हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने पर चारित्र भी सच्चा हुआ। इसलिए कहा कि **'मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी.... सम्यक् धारो भव्य पवित्रा।'** धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना जीव, पुण्य भी अनन्त बार कर चुका परन्तु वह संसार का ही कारण हुआ; धर्म का कारण जरा भी नहीं हुआ। धर्म और मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन ही है। सम्यग्दर्शन कर-करके अनन्त जीव मोक्ष में पधारे हैं; सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं हुआ।

आत्मा क्या है ? इसे जाने बिना जो राग को ही आत्मा मानता है, उसे सम्यग्दर्शन नहीं; सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र भी नहीं। सम्यग्दर्शनसहित ही ज्ञान और चारित्र शोभते हैं। इसलिए हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चयसम्यक्त्व को तू शीघ्र धारण कर। काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट कर। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्य बन्धन है; उसमें मोक्षमार्ग नहीं और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी कहीं राग, वह मोक्ष का मार्ग नहीं; रागरहित जो रत्नत्रय है, वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है, उतना तो बन्धन है।

व्यवहारसम्यग्दर्शन, वह राग है-विकल्प है; वह पवित्र नहीं। निश्चयसम्यग्दर्शन पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्प से भिन्न पड़कर चेतना द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना, वह सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है। इसीलिए शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण

www.vitragvani.com

करने का उपदेश है। हे जीवों! ऐसी सरस सम्यग्दर्शन की महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो! सावधान होओ! और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो। उसमें प्रमाद मत करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। बारम्बार ऐसा अवसर प्राप्त होना कठिन है। सम्यग्दर्शन नहीं किया तो इस दीर्घ संसार में जीव का कहीं पता लगे, ऐसा नहीं है। इसलिए हे सयाने समझदार जीवों! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर तुम्हारी स्वपर्याय को सम्हालो! उसे अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। तुम्हारी पर्याय के कर्ता तुम हो; भगवान तुम्हारी पर्याय के देखनेवाले हैं परन्तु कहीं करनेवाले नहीं हैं। कर्ता तो तुम ही हो; इसलिए तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन-पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है?—उसे जाने बिना अनन्त बार जीव, स्वर्ग में गया परन्तु वहाँ किंचित् भी सुख प्राप्त नहीं हुआ, संसार में ही परिभ्रमण किया। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को करोड़ों जन्म के तप से जो कर्म खिरते हैं, वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में खिर जाते हैं। इसलिए कहा है कि '**ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण**' तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख का अंश भी अनुभव में नहीं आता, अर्थात् धर्म नहीं होता। इसलिए हे समझदार जीवों! तुम यह सुनकर, समझकर चेतो और शीघ्र सम्यग्दर्शन धारण करके आत्महित करो। यह तुम्हारे हित का अवसर आया है। तुम कोई मूर्ख नहीं, तुम तो

www.vitragvani.com

समझदार ज्ञान के भण्डार हो। इसीलिए चेतकर समझो और सम्यग्दर्शन को धारण करो। यह सम्यक्त्व की प्राप्ति का अवसर है। इसे व्यर्थ मत गँवाओ।

जो समझदार है, जो आत्मा भवदु:ख से छूटने के लिये और मोक्षसुख के अनुभव के लिये सम्यक्त्व का पिपासु है—ऐसे भव्यजीव को सम्बोधन करके सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देते हैं। प्रभु! यह तेरे हित का अवसर है। तू कोई मूढ़ नहीं, परन्तु समझदार है, सयाना है, हित-अहित का विवेक करनेवाला है, जड़-चेतन का विवेक करनेवाला है। इसलिए तू श्रीगुरु का यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरन्त सम्यग्दर्शन धारण कर। इतने तक आकर अब विलम्ब मत कर। देहादिक से भिन्न आत्मा का अनुभव कर, उसका गहरा उद्यम कर।

समझ! सुन! चेत! सयाने! हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर, विलम्ब के बिना सम्यक्त्व को धारण कर। मात्र सुनकर अटक मत, परन्तु उसे समझकर सावधान हो और तेरी ज्ञानचेतना द्वारा तेरे शुद्ध आत्मा को चेत... उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ परमात्मा में जो है, वह सब तेरे आत्मा में भी है—ऐसा जानकर, प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृग की तरह बाहर में मत ढूँढ़; अन्दर में है, उसे अनुभव में ले।

अरे! संसार में रुलते-रुलते अनन्त काल में महा कठिनता से यह मनुष्य अवतार मिला, उसमें भी ऐसा जैनधर्म और सत्संग मिला, सम्यग्दर्शन का ऐसा उत्तम उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा कि ऐसा अवसर व्यर्थ गँवावे? भाई! काल गँवाये बिना

www.vitragvani.com

अन्तर में उद्यम द्वारा तू निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण कर। तूने चार गति के बहुत दु:ख सहे हैं, अब उन दु:खों से छूटने के लिये आत्मा की यह बात सुन। सम्यग्दर्शन की ऐसी उत्तम बात सुनकर अब तू जागृत हो और तुरन्त सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यह तेरा सम्हलने का काल है, सम्यग्दर्शन का अवसर है; इसलिए अभी ही सम्यग्दर्शन धारण कर!

देखो, कैसा सम्बोधन किया है! भोगभूमि में ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन के लिये उपदेश देकर मुनिराज ने भी ऐसा कहा था कि हे आर्य! अभी ही तू इस सम्यक्त्व को ग्रहण कर। तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह काल है और वास्तव में उस जीव ने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया। इसी प्रकार यहाँ भी कहते हैं कि हे भव्य! विलम्ब किये बिना तू अभी ही सम्यक्त्व को धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है, उतना ही तू है। अजीव से तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममता से भी आत्मा का स्वभाव भिन्न है; इस आत्मा के भान बिना अनन्त काल व्यर्थ गँवाया, परन्तु अब यह उपदेश सुनने के बाद तू एक भी क्षण न गँवा। तुरन्त अन्दर में सम्यग्दर्शन का उद्यम करना। एक-एक क्षण अत्यन्त मूल्यवान है। उत्कृष्ट मणिरत्न से भी मनुष्यपना कीमती है और उसमें भी इस सम्यग्दर्शन रत्न की प्राप्ति महादुर्लभ है। अनन्त बार मनुष्य हुआ और स्वर्ग में भी गया परन्तु सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ—ऐसा जानकर अब तू व्यर्थ काल गँवाये बिना, सम्यग्दर्शन प्रगट कर। तू उद्यम कर, वहाँ तेरी काललब्धि आ ही गयी है। पुरुषार्थ से काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिए हे भाई! इस

www.vitragvani.com

अवसर में आत्मा को समझकर उसकी श्रद्धा कर! अन्य व्यर्थ कार्यों में समय मत गँवा।

पर के कार्य तेरे नहीं और परचीज़ तेरे काम की नहीं। आनन्दकन्द आत्मा ही तेरा है, उसे ही काम में ले—श्रद्धा-ज्ञान में ले। परचीज़ या पुण्य-पाप तेरे हित के काम में नहीं आते; तेरा ज्ञानानन्दस्वभाव श्रद्धा में ले, वही तुझे मोक्ष के लिये काम में आयेगा। समयसार में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। जैसे माता पलना झूलाती है और लोरियाँ गाती है कि 'मेरा बेटा चतुर....' इसी प्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू चतुर अर्थात् सयाना-समझदार है; इसलिए अब मोह छोड़कर तू जाग, चेत... और तेरे आत्मस्वभाव को देख। आत्मा के स्वभाव का सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो मोक्ष अवश्य होनेवाला है। तेरे गुण के गीत गाकर सन्त तुझे जगाते हैं.... और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं। वाह! ज्ञानी-सन्तों का कैसा अचिन्त्य अपूर्व उपकार है।

आत्मा अखण्ड ज्ञान-दर्शन स्वरूप है, वह पवित्र है; पुण्य-पाप तो मलिन हैं, स्व-पर को जानने की ताकत उनमें नहीं है और भगवान आत्मा तो स्वयं अपने को तथा पर को भी जाने-ऐसा चेतकस्वभावी है—ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शन के बिना सब अंक के बिना शून्यवत् है; धर्म में उसकी कोई कीमत नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अन्दर चैतन्य के शान्तरस का वेदन है। अहा! उस शान्ति के अनुभव की क्या बात! श्रेणिक राजा अभी नरक में होने पर भी, सम्यग्दर्शन के प्रताप से

www.vitragvani.com

वहाँ के दुःख से भिन्न ऐसे चैतन्यसुख का वेदन भी उन्हें वर्त रहा है। पहले मिथ्यात्वदशा में महापाप से उन्होंने सातवें नरक की असंख्य वर्ष की आयु बाँध ली थी परन्तु फिर महावीर प्रभु के समवसरण में वे क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त हुए और सातवें नरक की आयु तोड़कर पहले नरक की; और वह भी मात्र चौरासी हजार वर्ष की कर डाली। वे राजगृही के राजा गृहस्थदशा में अव्रती थे, तथापि क्षायिकसम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। नरक गति नहीं बदली परन्तु उसकी स्थिति तोड़कर असंख्यातवें भाग की कर दी। नरक की घोर यातना के बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शनपरिणति का सुख वे आत्मा में वेदन कर रहे हैं। '**बाहर नारकीकृत दुःख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी।**' इस प्रकार सम्यग्दर्शनसहित जीव नरक में भी सुखी है और सम्यग्दर्शन बिना तो स्वर्ग में भी जीव दुःखी है। इसीलिए परमात्मप्रकाश में कहा है कि सम्यग्दर्शन -सहित तो नरकवास भी भला है और सम्यग्दर्शन से रहित देवलोक में वास भी इष्ट नहीं है, अर्थात् जीव को सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकर है; इसके बिना जीव को कहीं सुख नहीं। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आत्मरस का वेदन है; देवों के अमृत में भी उस आत्मरस का सुख नहीं है। मनुष्य जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन से ही है; स्वर्ग से भी सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है... तीन लोक में सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शनसहित हो, तभी श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं।

नरक में भी श्रेणिक को भिन्न आत्मा का भान है और सम्यक्त्व के प्रताप से निर्जरा हुआ करती है, वहाँ भी उन्हें निरन्तर तीर्थंकर प्रकृति बँधा करती है। नरक में से निकलकर वे भरतक्षेत्र की

www.vitragvani.com

आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। उनके गर्भागमन के छह महीने पहले यहाँ इन्द्र-इन्द्राणी उनके माता-पिता की सेवा करने आयेंगे और रत्नवृष्टि करेंगे। वे तो अभी नरक में होंगे। पश्चात् माता के गर्भ में आयेंगे, तब भी सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञानसहित होगें तथा अवधिज्ञान भी होगा।

मैं देह नहीं, मैं नारकी नहीं, मैं दु:ख नहीं; इस देह के छेदन-भेदन से मेरा आत्मा छिदता-भिदता नहीं; मैं तो चैतन्य सुख का अखण्ड शाश्वत् पिण्ड हूँ-ऐसी आत्मश्रद्धा उन्हें नरक में भी सदा वर्तती है, और वह मोक्षमहल की सीढ़ी है। नरक में होने पर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से वह आत्मा, मोक्ष के मार्ग में ही परिणमित हो रहा है। अहो! सम्यग्दर्शन की कोई अचिन्त्य अद्भुत महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर, हे जीवों! तुम अपने में उसकी आराधना करो।

रे जीव! दुनिया, दुनिया में रही; तू तेरा आत्मभान करके तेरे हित को साध ले। सम्यग्दर्शन क्या है ?—इसकी दुनिया को खबर नहीं है। सम्यग्दर्शन दूसरों को इन्द्रियज्ञान से दिखायी दे, वैसा नहीं है। अहा! सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में मोक्ष का सिक्का लग गया है और परमसुख का निधान खुल गया। उसका तो जो अनुभव करे, उसे वास्तविक पता लगे। कोई मूर्ख हाथ में आये हुए चिन्तामणि को समुद्र में फेंक दे तो फिर से वह हाथ में आना जैसे कठिन है; वैसे चिन्तामणि जैसा यह मनुष्य अवतार, यदि सम्यग्दर्शन बिना गँवा दिया तो भव के समुद्र में फिर से उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है; इसलिए इस दुर्लभ अवसर में अन्य सब पंचायत छोड़कर

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन कर लेने योग्य है। यह अवसर चूकने योग्य नहीं है। ऐसा सम्यग्दर्शन जिसका मूल है-ऐसा वीतरागी धर्म 'दंसण मूलो धम्मो'—जिनवरदेव ने उपदेश किया है। ढाई हजार वर्ष पहले महावीर तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र में ऐसा ही उपदेश देते थे और उसे सुनकर अनेक जीव सम्यक्त्व प्राप्त करते थे; अभी सीमन्धरादि तीर्थंकर भगवन्त विदेहक्षेत्र में ऐसा ही उपदेश देते हैं और उसे झेलकर कितने ही जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। अभी यहाँ भी ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक आत्मार्थी जीव को ऐसा उत्तम कल्याणकारी सम्यग्दर्शन अवश्य करना चाहिए। इसलिए हे विवेकी आत्मा! तू इस अवसर में सम्यग्दर्शन का ऐसा माहात्म्य सुनकर सावधान हो और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर... अनुभवी ज्ञानी से समझकर सम्यग्दर्शन प्रगट करना, यह मनुष्य जीवन का अमूल्य कार्य है, इसके बिना जीवन को व्यर्थ मत गँवा।

शरीर और आत्मा भिन्न है, राग और आत्मा भिन्न है; शरीर और रागरहित तेरा चैतन्यतत्त्व अखण्ड ऐसा का ऐसा तुझमें है। चैतन्यमय तेरे स्वतत्त्व को पर से भिन्न देखकर प्रसन्नता द्वारा अनुभव में ले और मोक्षमार्ग में आ जा। लाख-करोड़ रुपये देने पर भी जिसका एक क्षण मिलना मुश्किल है—ऐसा यह मनुष्य जीवन वृथा न गँवा। मनुष्यपने की शोभा सम्यग्दर्शन से है; इसलिए इस जन्म में सम्यग्दर्शन प्रगट कर ले, जिससे आत्मा में मोक्षमार्ग शुरु हो जाये। अमूल्य जीवन में उससे भी अमूल्य ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट कर। करोड़ों रुपये या परिवार, वह कोई शरण नहीं है, पुण्य भी शरण नहीं है; सम्यग्दर्शन ही शरण है। उस सम्यग्दर्शन द्वारा ही जीवन

www.vitragvani.com

की सफलता और जीव की शोभा है। ऐसा अच्छा योग बारम्बार नहीं मिलता, इसलिए इसमें सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करो।

अन्त में फिर से कहते हैं कि हे जीव! आत्मा को समझकर श्रद्धा करने का यह अवसर आया है। इसे सम्हाल लेना। भाई! आत्मा का स्वरूप समझकर हित करने जितना उघाड़ तुझे हुआ है, तो उस उघाड़ को पर में (संसार के कार्यों में) व्यर्थ न गँवा; उसे आत्मा में लगा। उपयोग को अन्तर्मुख करके वीतराग-विज्ञान प्रगट कर। तेरी बुद्धि को आत्मा में जोड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। तू स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, दूसरा तुझे क्या कहें ?

चेत! चेत! चेत!

●

रे आत्मा!

तेरे जीवन में उत्कृष्ट वैराग्य के जो प्रसङ्ग बने हों और वैराग्य की सितार जब झनझना उठी हो... ऐसे प्रसङ्ग की वैराग्यधारा को भलीभाँति बनाये रखना, बारम्बार उसकी भावना करना। कोई महान प्रतिकूलता, अपयश इत्यादि उपद्रव-प्रसङ्ग में जागृत हुई वैराग्यभावना को याद रखना। अनुकूलता में वैराग्य को भूल मत जाना।

और कल्याणक के प्रसङ्गों को, तीर्थयात्रा इत्यादि प्रसङ्गों को, धर्मात्मा के सङ्ग में हुई धर्मचर्चा इत्यादि कोई अद्‌भुत प्रसङ्गों को, सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय सम्बन्धी जागृत हुई किन्हीं ऊर्मियों को तथा तेरे प्रयत्न के समय धर्मात्मा के भावों को याद करके बारम्बार तेरे आत्मा को धर्म की आराधना में उत्साहित करना।

www.vitragvani.com

परमात्मा का पुत्र

अहो! सम्यग्दृष्टि जीव तो परमात्मा का पुत्र हो गया, साधक होकर वह सर्वज्ञ परमात्मा की गोद में बैठा, अब उसे केवलज्ञान-उत्तराधिकार लेने की तैयारी है। मोक्षमहल की सीढ़ी पर चढ़ने का उसने शुरु कर दिया है। उसकी दशा का यह वर्णन है।

सम्यक्त्व की अपार महिमा बतलाकर श्रीगुरु कहते हैं कि अहो! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को बहुमान से धारण करो। किंचित् भी काल व्यर्थ गँवाये बिना, प्रमाद छोड़कर, अन्तर में शुद्धात्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन को धारण करो। देव भी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा करते हैं कि—

वाह! धन्य तुम्हारा अवतार और धन्य तुम्हारी आराधना!

भव का किया अभाव... ऐसा धन्य तुम्हारा अवतार!

सम्यग्दर्शन द्वारा तुम्हारा मानव जन्म तुमने सफल किया!

तुम जिनेश्वर के पुत्र हुए, तुम मोक्ष के साधक हुए!

इन्द्र स्वयं सम्यग्दृष्टि है, अवधिज्ञानी है, समकित की महिमा स्वयं अन्दर अनुभव किया है; इसलिए असंयमी मनुष्य या तिर्यंच के भी समकित की वह प्रशंसा करता है। भले वस्त्र हो, परिग्रह हो, उससे कहीं सम्यग्दर्शन रत्न की कीमत घट नहीं जाती। मलिन कपड़े में लिपटा रत्न हो, उसकी कीमत कहीं घट नहीं जाती। इसी प्रकार गृहस्थ सम्यग्दर्शनरूपी रत्न असंयमरूपी मलिन कपड़े में बँधा हुआ हो, उससे कहीं उसकी कीमत घट नहीं जाती। सम्यग्दर्शन के कारण वह गृहस्थ भी मोक्ष का पंथी है।

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि आत्मा के आनन्द में रहनेवाला है; जहाँ आत्मा के आनन्द का स्वाद चखा, वहाँ जगत् के विषयों का प्रेम उसे उड़ गया है; उसकी दशा कोई परम गम्भीर है, वह बाहर से नहीं पहिचाना जाता। अकेला चिदानन्दस्वभाव अनुभव करके जिसने भव का अभाव किया है, उस समकित की अचिन्त्य महिमा है। अनादि के दुःख का नाश करके अपूर्व मोक्षसुख को वह देनेवाला है। अनन्त काल में जो नहीं किया था, वह उसने किया—ऐसे समकित का स्वरूप और उसकी महिमा तो अन्दर समाविष्ट होती है; कहीं देवों द्वारा पूजा के कारण उसकी महिमा नहीं है, उसकी महिमा तो अन्दर अपने आत्मा की अनुभूति से है। उस अनुभूति की महिमा तो वचनातीत है।

जिसे राग में एकत्व है—ऐसे मिथ्यादृष्टि-महाव्रती की अपेक्षा तो राग से भिन्न चैतन्य को अनुभव करनेवाले समकिती अव्रती भी पूज्य है-महिमावन्त है-प्रशंसनीय है। अहो! तुमने आत्मा का कार्य किया, आत्मा की अनुभूति द्वारा तुम भगवान के मार्ग में आये-इस प्रकार इन्द्र भी अपने साधर्मी के रूप में उसके प्रति प्रेम आता है। ऐसे मनुष्यदेह में पंचम काल की प्रतिकूलता के बीच भी तुमने आत्मा को साधा... तुम धन्य हो-ऐसा 'सूरनाथ जचे हैं' अर्थात् सम्यक्त्व का बहुमान करते हैं, अनुमोदन करते हैं, प्रशंसा करते हैं। श्री कुन्दकुन्दस्वामी जैसे वीतरागी सन्त भी अष्टप्राभृत में कहते हैं कि—

सम्यक्त्व सिद्धि कर अहो स्वप्न में नहीं दूषित है,
वह धन्य है, कृतकृत्य है शूरवीर पण्डित है।

www.vitragvani.com

श्री समन्तभद्रस्वामी, रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं कि भले ही चाण्डाल शरीर में उत्पन्न हुआ हो, तथापि जो जीव, सम्यग्दर्शन सम्पन्न है, उसे गणधरदेव 'देव' कहते हैं; भस्म से आच्छादित तेजस्वी अंगार की तरह वह जीव, सम्यक्त्व द्वारा शोभित है। सम्यग्दृष्टि तिर्यंचपर्याय में हो या स्त्रीपर्याय में हो, तथापि सम्यक्त्व के प्रताप से वह शोभा देता है। तिर्यंचपर्याय और स्त्रीपर्याय लोक में सामान्य से निन्दनीय है परन्तु यदि सम्यग्दर्शनसहित हो तो वह प्रशंसनीय है। उसने स्वानुभव द्वारा स्व-पर का विभाजन कर दिया है कि ज्ञानानन्दस्वरूप ही मैं, और शुद्धात्मा के विकल्प से लेकर पूरी दुनिया वह पर - ऐसी दृष्टि की अपार महिमा है, उसकी अपार सामर्थ्य है, उसमें अनन्त केवलज्ञान के पुंज आत्मा का ही आदर है। अहा! उसके अन्दर की परिणमन धारा में उसने आनन्दमय स्व-घर देखा है। वह अपने आनन्द घर में ही रहना चाहता है, राग को पर-घर मानता है, उसमें जाना नहीं चाहता। चैतन्यधाम, जहाँ कि मन लगा है, वहाँ से हटता नहीं और जहाँ से पृथक् पड़ा है, वहाँ जाना चाहता नहीं।

आठ वर्ष की लड़की हो, सम्यग्दर्शन प्राप्त करे और उसके माता-पिता को पता पड़े तो वे भी कहते हैं कि वाह पुत्री! तेरे अवतार को धन्य है! तूने आत्मा का काम करके जीवन सफल किया। आत्मा में समकित दीपक प्रगटाकर तूने मोक्ष का पंथ लिया। उम्र भले छोटी हो, परन्तु आत्मा को साधे, उसकी बलिहारी है, वह जिनेश्वर भगवान का लघुनन्दन है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की चेतना अपने आत्मा के अतिरिक्त

www.vitragvani.com

अन्य सबसे अलिप्त होती है। आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं उसका मन स्थिर नहीं होता; आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु उसे नहीं रुचती, उसे सच्चा प्रेम और एकता आत्मा में ही है। पर के प्रति राग दिखायी दे परन्तु उसमें कहीं-पर में या राग में अंशमात्र सुखबुद्धि नहीं। राग और स्वभाव के बीच उसे बड़ी दरार पड़ गयी है, अत्यन्त भेद पड़ गया है, वह कभी एकता नहीं होती। राग और ज्ञान को वह भिन्न का भिन्न ही अनुभव करता है। ऐसी ज्ञानदशावन्त सम्यग्दृष्टि की महिमा अपार है। जैसे नारियल में अन्दर खोपरे का गोला काँचली से पृथक् ही है; इसी प्रकार धर्मात्मा के अन्तर में चैतन्य गोला, रागादि परभावों से भिन्न का भिन्न ही है; वह रागादिरूप नहीं होता, संयोग को अपने नहीं देखता; उनसे अपने को भिन्न ही देखता है।

बड़ा चक्रवर्ती हो या छोटा मेंढ़क हो-सभी सम्यक्त्वियों की ऐसी दशा होती है। उन्होंने आकाश जैसा अलिप्त अपना आत्मस्वभाव जाना; इसलिए परभावों के प्रेम में वे लिप्त नहीं होते। गृहस्थपना है-परन्तु वह तो हाथ में पकड़े गये जहरीले सर्प जैसा है। जैसे हाथ में पकड़ा हुआ सर्प फेंक देने के लिये है, पोषण के लिये नहीं; उसी प्रकार धर्मी को असंयम के जो रागादि हैं, उसे वह सर्प समझकर छोड़ना चाहता है; उस राग को अपना समझकर पोषण के लिये नहीं है। अपने चैतन्यस्वभाव की अनुभूति से भिन्न जानकर अभिप्राय में तो उन समस्त परभावों को छोड़ ही दिया है कि ये भाव मैं नहीं। स्वानुभव द्वारा स्व-पर का विवेक हुआ है; इसलिए स्वतत्त्व में ही प्रीति है और उन पर की प्रीति छूट गयी है।

www.vitragvani.com

विषय-कषाय तो पाप है, धर्मी भी उन्हें पाप ही समझता है परन्तु उस समय धर्मी के अन्तर में जो सम्यग्दर्शन है, वह शुद्ध है, वह प्रशंसनीय है, वह मोक्ष का कारण है। उस सम्यग्दर्शन का भाव, विषय-कषायों से अलिप्त है। एकसाथ भिन्न-भिन्न दो धारायें चल रही हैं—एक सम्यक्त्वादि शुद्धभाव की धारा और दूसरी राग धारा। उसमें धर्मी को शुद्धभाव की धारा में तन्मयपना है और उसी के द्वारा धर्मी की सच्ची पहिचान होती है। अज्ञानी अकेली रागधारा को देखता है; इसलिए वह धर्मी को पहिचान नहीं सकता है।

अहा! वीतरागी जैनमार्ग! उसका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन, वह भी अलौकिक है। जैनमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र तो सम्यग्दर्शन होता नहीं; अन्य मार्ग की मान्यता तो गृहीत मिथ्यात्व है। धर्मी को ऐसे कुमार्ग का आदर नहीं होता। उसने तो चैतन्य के अनन्त गुण के रस से भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवसहित आत्मा की प्रतीति की है। उसके साथ निःशंकता आदि आठ भव होते हैं। उसे तीव्र अन्याय के कर्तव्य नहीं होते, माँस, अण्डा इत्यादि अभक्ष्य खुराक नहीं होती, महापाप के कारणरूप ऐसे सप्त व्यसन (शिकार, चोरी, जुआ, परस्त्री सेवन इत्यादि) उसे नहीं होते। अरे! जिज्ञासु सज्जन को भी ऐसे पाप कार्य नहीं होते तो सम्यग्दृष्टि को तो कैसे होंगे? चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भले संयमदशा नहीं है, तथापि उसे अलौकिक ज्ञान-वैराग्यदशा होती है; स्वरूप में आचरणरूप स्वरूपाचरण है; मिथ्यात्व या अनन्तानुबन्धी क्रोधादि उसे होते ही नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द, धर्मी के ज्ञान में वर्तता है। इसलिए उसे अन्यत्र कहीं सन्तोष या आनन्द नहीं होता। विषयों की गृद्धि नहीं परन्तु उनका खेद है। धर्म के नाम से वह कभी

www.vitragvani.com

स्वच्छन्द का पोषण नहीं करता। असंयम है परन्तु कहीं स्वच्छन्द नहीं है। अरे! आत्मा के आनन्द का साधक तो जगत से उदास हुआ-उसे अब स्वच्छन्द कैसा? पर्याय-पर्याय में उसका ज्ञान राग से भिन्न रहकर मोक्ष को साध रहा है और उसी में सच्चा वैराग्य है, जहाँ राग का कर्तृत्व ही उड़ गया, वहाँ उसका जोर टूट गया है; इसलिए असंयमदशा होने पर भी, कषायें मर्यादा में आ गयी हैं, उसके श्रद्धा-ज्ञान मलिन नहीं होते। ऐसा सम्यग्दर्शन जो जीव पाया, वह इन्द्र द्वारा भी प्रशंसनीय है।

अहो! ऐसे निकृष्ट काल में भी अन्तर में उतरकर जो आत्मदर्शन को प्राप्त हुआ, वह धन्य है; वह तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के दरबार में जाकर बैठा; पंच परमेष्ठी की जाति में मिला। वह सर्वज्ञ परमात्मा का पुत्र हुआ; शास्त्रों ने जिस चैतन्यवस्तु की अनन्त महिमा गायी है, वह चैतन्यवस्तु उसने अपने में प्राप्त कर ली, वह सुकृती है, जगत का उत्कृष्ट कार्य उसने कर लिया है, इसलिए वह धन्य है... धन्य है... धन्य है। ●

❋ जीव को सच्चा सन्तोष तभी होता है कि जब अपने परमतत्त्व को अपने में ही देखे और पर को अपने से भिन्न देखे।

❋ हे जीव! जिस कार्य को करने से तुझे आत्मा का आनन्द प्राप्त होता हो, उस कार्य को अभी कर ले; उसमें विलम्ब मत कर।

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि की उज्ज्वल परिणाम

सम्यग्दृष्टि जीव की गति अर्थात् उसकी परिणति का प्रवाह सिद्धगति की ओर ही जाता है; उसके परिणाम उज्ज्वल होते हैं। आनन्दमय मोक्षगति को साधते-साधते बीच में साधकभाव के साथ में उसे उदयभाव भी ऐसे ही होते हैं कि जिनसे संसार की उत्तम गति में ही अवतरित हो। यद्यपि उसके सम्यक्त्वादि साधकभाव तो उस गति इत्यादि सर्व उदयभावों से अत्यन्त भिन्न वर्तते हैं, और सिद्धपद की ओर ही उसकी सम्यक्गति शीघ्रता से चल रही है परन्तु सम्यक्त्व के साथ उच्च पुण्य का कैसा मेल होता है, वह यहाँ बताया है। वरना तो सम्यग्दृष्टि स्वयं को राग से भी भिन्न अनुभव करता है, वहाँ पुण्य या संयोग की क्या बात?

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति चारों गति के जीवों को हो सकती है। इन्द्र या मनुष्य, तिर्यंच या नरक-चारों गति में पात्र जीव, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। नरक में भी असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं। सम्यग्दर्शनसहित मरकर जीव कहाँ उत्पन्न होता है? कहाँ नहीं उत्पन्न होता वह निम्नानुसार है—

❋ देवगति में से अवतरित होकर समकिती जीव उत्तम मनुष्य में ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

❋ नरक में से मरकर समकिती जीव उत्तम मनुष्य में ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

❋ तिर्यंच में से मरकर समकिती जीव, वैमानिक स्वर्ग में ही जाता है, अन्यत्र नहीं जाता।

www.vitragvani.com

❋ अब सम्यग्दृष्टि मनुष्य में दो बात है—

सामान्यरूप से तो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर स्वर्ग में ही जाता है।

किन्तु जिसे सम्यग्दर्शन से पूर्व मिथ्यात्वदशा में आयुष्य बंध गयी हो और पश्चात् सम्यग्दर्शन पाया हो, वह जीव, सम्यक्त्वसहित मरकर, यदि नरक की आयु बँधी हो तो पहले नरक में जाता है और यदि तिर्यंच की या मनुष्य की आयु बँधी हो तो भोगभूमि के तिर्यंच या मनुष्य में उत्पन्न होता है—फिर इसमें इतनी विशेषता है कि ऐसे जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।

—जैसे कि श्रेणिक राजा; उन्होंने पहले अज्ञानदशा में जैन मुनिराज पर उपसर्ग करके सातवें नरक की आयु का बन्ध किया, किन्तु फिर जैनधर्म को प्राप्त हुए और महावीर प्रभु के चरण सान्निध्य में क्षायिक सम्यग्दर्शन पाया, वहाँ नरक की स्थिति घटकर असंख्यात वर्षों में से चौरासी हजार वर्ष की ही रही, और सातवीं के बदले पहले नरक में गये। जिस गति की आयु बँध गयी हो, वह गति नहीं बदलती। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति पूर्ण होने पर वहाँ से निकलकर वह जीव, भरतक्षेत्र में तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमात्मा होगा- यह सम्यक्त्व का प्रताप है। योगसार में कहते हैं कि —

सम्यग्दृष्टि जीव को दुर्गति गमन न होय,
यदि जाय तो दोष नहीं, पूर्व कर्म क्षय होय॥

अहो! सम्यग्दृष्टि जीव, सिद्धगति का साधक है! उसे अब दुर्गति कैसी? सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यक्त्व के पश्चात् दुर्गति गमन नहीं होता; पूर्व में बाँधी हुई आयु के कारण कदाचित् नरक

www.vitragvani.com

में जाये तो भी वहाँ सम्यग्दर्शन का तो कोई दोष नहीं है; वह तो पूर्व अज्ञानदशा में बाँधे हुए कर्म का फल है और उस कर्म को भी वह निर्जरित कर डालता है क्योंकि उस कर्म और उसका फल, दोनों से उसकी चेतना भिन्न की भिन्न ही रहती है; वह चेतना मोक्ष को साधती है।

देखो, इसमें कितनी बात आ गयी ? प्रथम तो संसार में चार गति के स्थान हैं, तथा चार गति से पार पाँचवीं सिद्धगति भी है, उसे साधनेवाले जीव भी संसार में हैं। आत्मा का ज्ञान होते ही जीव का मोक्ष हो जाये और वह संसार में रहे ही नहीं - ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी किसी को अमुक भव होते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को असंयम और अशुभभाव होने पर भी, सम्यग्दर्शन के प्रताप से उसके परिणाम इतने उज्ज्वल होते हैं कि उत्तम देव या उत्तम मनुष्य में ही वह उत्पन्न होता है; हल्के देव में वह उत्पन्न नहीं होता अथवा देवी नहीं होता। सम्यग्दृष्टि मरकर इन्द्राणी भी नहीं होता। स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यात्वदृष्टि ही उत्पन्न होता है। भले ही वह उत्पन्न होने के पश्चात् सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। हल्के देव-देवियाँ, छह नरक, पहले नरक के अतिरिक्त के नपुंसक -इन सब में उत्पन्न जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं परन्तु वहाँ उत्पन्न हों तब तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। जो लोग मल्लि तीर्थंकर को स्त्री कहते हैं, उन्हें सिद्धान्त का पता नहीं है; तीर्थंकर का आत्मा तो पूर्वभव में से सम्यग्दर्शन साथ लेकर ही अवतरित होता है तो वह स्त्रीपर्याय में कैसे उत्पन्न होगा ? स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होता है।

सम्यग्दृष्टि देव हो, वह मनुष्य में अवतरित होता है परन्तु

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर कर्मभूमि का मनुष्य नहीं होता। पूर्व में आयु बँध गयी हो और मनुष्य हो तो वह भोगभूमि में ही मनुष्य होता है, परन्तु विदेहक्षेत्र इत्यादि कर्मभूमि में नहीं जाता है। बहुत से लोग समझे बिना कहते हैं कि अमुक धर्मात्मा यहाँ से मरकर विदेहक्षेत्र में उत्पन्न हुए-परन्तु यह भूल है। जो मनुष्य मरकर विदेह में उत्पन्न होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि ही होता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादि यहाँ से विदेह में गये थे, यह सत्य है परन्तु वे तो देहसहित गये थे; समाधिमरण करके तो वे स्वर्ग में गये हैं।

अज्ञानदशा में नरक की आयु बँध गयी हो और फिर जो जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, वह पहले नरक से नीचे नहीं जाता। नीचे के छह नरकों में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता; वहाँ जाने के बाद तो सातों ही नरक के जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। सातों ही नरकों में असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं। सम्यग्दर्शन के पश्चात् तो नरक और तिर्यंच की आयु बँधती ही नहीं। भले अव्रती हो परन्तु इकतालीस कर्मप्रकृति का बन्धन, सम्यग्दृष्टि को कभी नहीं होता। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व, हुण्डक इत्यादि पाँच संस्थान; वज्रवृषभनाराच के अतिरिक्त पाँच संहनन, नपुंसकवेद-स्त्रीवेद, एकेन्द्रिय से चतुरेन्द्रिय, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति-नरकानुपूर्वी-नरकायु, तिर्यंचगति-तिर्यंच अनुपूर्वी-तिर्यंचायु, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ। स्त्यानगृद्धि-निद्रा-निद्रा-प्रचलाप्रचला ये तीन दर्शनावरण, अप्रशस्त विहायोगति, नीचगोत्र, दुर्भग, दुःस्वर तथा अनादेय—ये प्रकृतियाँ मिथ्यात्व अवस्था में बँध गयी हों तो भी सम्यक्त्व के प्रभाव से नष्ट हो जाती है-परन्तु आयुबन्ध किया हो, वह सर्वथा छूटता नहीं है;

www.vitragvani.com

तथापि सम्यक्त्व का ऐसा प्रभाव है कि सातवें नरक की आयु बँध गयी हो तो उसकी स्थिति-रस एकदम घटकर पहले नरक के योग्य हो जाती है; तिर्यंच या मनुष्य की हल्की आयु बँध गयी हो तो सम्यक्त्व के प्रभाव से उत्तम भोगभूमि में ही मनुष्य या तिर्यंच होता है; व्यंतर इत्यादि हल्के देव की आयु बँध गयी हो तो उसके बदले सम्यक्त्व के प्रभाव से कल्पवासी देवों में ही जाता है तथा सम्यग्दृष्टि नीच कुल में या दरिद्रता में उत्पन्न नहीं होता, अत्यन्त अल्प आयु का धारक नहीं होता, विकृत अंगवाला या लूला, गूँगा, बहरा, अंधा भी उत्पन्न नहीं होता। यद्यपि यह सब बाहर का पुण्यफल है; सम्यग्दर्शन की अनुभूति तो इन सबसे अत्यन्त भिन्न ही है। देवादि के उत्तम शरीर से भी सम्यग्दृष्टि अपने को अत्यन्त भिन्न ही अनुभव करता है परन्तु सम्यक्त्व के साथ पुण्य का ऐसा सुमेल होता है-ऐसा बताना है। बाकी तो सम्यग्दृष्टि अपने को राग से भी भिन्न अनुभव करता है, वहाँ इस पुण्य की और संयोग की क्या बात!

देवों में तो नपुंसक होते ही नहीं; मनुष्य या तिर्यंच में नपुंसक हों, उनमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता। जो सम्यग्दृष्टि पहले नरक में उत्पन्न होता है, उसे नपुंसकपना हो वह अलग बात है, क्योंकि नरक में तो सबको एक नपुंसकवेद ही होता है, वहाँ स्त्रीवेद या पुरुषवेद होता ही नहीं। कौन सा जीव कहाँ उत्पन्न होता है और कहाँ नहीं उत्पन्न होता?—इसका विस्तार से वर्णन षट्खण्डागम इत्यादि सिद्धान्तसूत्रों में है।

देखो! चार गति है, उसके योग्य जीव के भाव हैं, जीव को एक गति में से दूसरी गति में पुनर्जन्म अपने भाव-अनुसार होता

www.vitragvani.com

है; कोई ईश्वर उसे कर्म का फल नहीं देता-इन सबकी आस्तिकता होनी चाहिए। चार गति, पुनर्जन्म, कर्मफल इत्यादि का न माने, उसे तो गृहीतमिथ्यात्व है। उसे तो यह एक भी बात कहाँ से समझ में आयेगी? 'बस विकल्प तोड़ो' ऐसा कहे और अन्दर तत्त्व -निर्णय का तो ठिकाना नहीं होता, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

अरे! लोग, भगवान महावीर को ईशु, बुद्ध या गाँधी के साथ तुलना करते हैं। उन्हें तो जैनधर्म की गन्ध भी नहीं है, उनकी श्रद्धा तो जैनधर्म से अत्यन्त विपरीत है। सर्वज्ञ का जैनमार्ग तो कोई अद्भुत, अलौकिक, जगत् से अलग प्रकार का है; दूसरे किसी मार्ग के साथ उसकी तुलना हो—ऐसा नहीं है। यह तो भगवान का मार्ग है और भगवान होने का मार्ग है।

प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा है, उसका भान होने पर भी, जिसे अभी राग सर्वथा नहीं छूटा हो—ऐसे जीव को फिर अवतार होता है परन्तु वह उत्तम गति में ही जाता है। सम्यग्दर्शन होने के बाद उत्तमदेव और उत्तम मनुष्य के अतिरिक्त सब संसार छेदन हो गया है। सम्यग्दृष्टि जहाँ उत्पन्न हो, वहाँ ओजस्वी -पराक्रमी, तेजस्वी-प्रतापवन्त, विद्यावन्त, वीर्यवन्त, उज्ज्वल -यशस्वी, वृद्धिवन्त, विजयवन्त, महान कुलवन्त, चतुर्विध पुरुषार्थ के स्वामीरूप से उत्पन्न होता है और मानवतिलक होता है अर्थात् समस्त मनुष्यों में तिलक की तरह शोभित होता है। समस्त लोग उसका आदर करते हैं। चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद भी सम्यग्दृष्टि को ही होता है और ऐसे उत्तम पद को पाकर वह रत्नत्रय की पूर्णता करके मोक्ष को प्राप्त करता है, सम्यग्दर्शन का ऐसा महान प्रताप है।

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि असंयमी हो, विषय-कषाय के भाव होते हों, तथापि उसे अशुभ के समय आयु नहीं बँधती; शुभ के समय ही बँधती है, क्योंकि उत्तम आयु ही बँधती है; परिणाम की मर्यादा ही ऐसी है। उत्तमदेव या मनुष्य में जाये, वहाँ भी सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्दृष्टि में अपने शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य सबसे अलिप्त ही रहता है; देवलोक के वैभव के बीच भी वह आत्मा को भूलता नहीं है।

देह-मन-वाणी, कर्म, पुण्य-पाप, राग-द्वेष, स्त्री, व्यापार इत्यादि होने पर भी, उसके सामने एक सम्पूर्ण चिदानन्द तत्त्व भी विद्यमान है; उन देहादि सबसे पार चिदानन्दतत्त्व ही मैं हूँ-ऐसा धर्मी को भान है। बाहर में सब होने पर भी, मेरे तत्त्व में वे कोई नहीं, मेरा तत्त्व उनरूप हुआ नहीं, सबसे न्यारा का न्यारा ही है— ऐसी शुद्धदृष्टि रखकर व्यवहार को भी जैसा है, वैसा जानता है। रागादि और गृहवास है, उसे कहीं अच्छा नहीं मानता, उसे तो कीचड़ जैसा जानता है। अरे, मेरे शुद्धतत्त्व में से बाह्य विषयों में वृत्ति जाये, वह कीचड़ जैसी है; सर्वज्ञस्वभावी मेरे आत्मा को इस कीचड़ से शोभा नहीं है। सम्यग्दर्शन हो गया है; इसलिए अब चाहे जो वृत्ति आवे तो क्या बाधा ? - ऐसा वह धर्मी नहीं कहता परन्तु जितनी विषय-कषाय की वृत्तियाँ हैं, उन्हें अपना दोष समझता है। जैसे रोगी को रोग का या औषध का प्रेम नहीं है, वह तो उसे मिटाना चाहता है। वैसे धर्मी को असंयम का या विषयों का प्रेम नहीं है, उन्हें तो वह छोड़ना चाहता है। इस प्रकार दोष को दोष जानता है और दोषरहित शुद्धतत्त्व को भी जानता है; इसलिए रागादिभाव होने पर भी, धर्मी जीव अन्तर से न्यारा है। अतीन्द्रिय आनन्दमय चैतन्यस्वभाव में राग को प्रविष्ट नहीं होने देता। जैसे

www.vitragvani.com

अच्छा मनुष्य, जेल में रहना पड़े, उसे अच्छा नहीं मानता; वैसे धर्मात्मा को राग-द्वेष-पुण्य-पाप जेल जैसे लगते हैं; परभाव में गृहवासरूपी असंयम की जेल में धर्मीजीव आनन्द नहीं मानता परन्तु उनसे छूटना चाहता है। सम्यग्दर्शन होने पर मुक्ति के स्वाद का नमूना तो चख लिया है, इसलिए राग के रस में उसे कहीं चैन नहीं पड़ता।

सदन निवासी तदपि उदासी तातैं आस्रव छटाछटी,
संयम धर्म सके पै संयम धारण की उर चटाचटी॥

सम्यग्दृष्टि की ऐसी अलौकिक दशा है। शास्त्रों में पेट भरभरकर सम्यग्दर्शन की महिमा गायी है। सम्यग्दर्शन में सम्पूर्ण आत्मा का स्वीकार है। सम्यग्दर्शन सर्वोत्तम सुख का कारण है, वही धर्म का मूल है। समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि —

तीन काल अरु त्रिलोक में सम्यक्त्वसम नहीं श्रेष्ठ है,
मिथ्यात्वसम अश्रेय को नहीं, जगत में इस जीव के॥

www.vitragvani.com

मैं तो ज्ञातादृष्टा हूँ

(आत्मभावना)

अनन्त द्रव्य जगत में बसते..... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
निज स्वरूप में सदा ही रहता.... मैं तो आतमराम हूँ।
पररूप तो कभी न होता....मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
स्वयं परिणामी निजभाव से.... मैं तो आतमराम हूँ।
नहीं परिणमाता किसी को.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
स्व-पर तत्त्व का ज्ञायक ऐसा.... मैं तो आतमराम हूँ।
परिणति को निज में झुकाकर.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
इष्ट अनिष्ट संयोग-वियोग.... मैं तो आतमराम हूँ।
देहादि से भिन्न सदा ही.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
रागादिक परभाव भिन्न.... मैं तो आतमराम हूँ।
ज्ञायकभाव की श्रद्धा करता.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
परम सुन्दर निजरूप देखता.... मैं तो आतमराम हूँ।
आनन्द रस में तन्मय रहता.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
निज अनन्तगुण में बसता.... मैं तो आतमराम हूँ।
गुण-गुणी में भेद न देखूँ.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
ज्ञेय ज्ञान ज्ञातारूप एक ही.... मैं तो आतमराम हूँ।
सिद्धस्वरूपी आतमरामी.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
मधुर चैतन्यरस का स्वादी.... मैं तो आतमराम हूँ।
निज उपयोग से सदा ही जीता.... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
परम पारिणामिकस्वरूपी.... मैं तो आतमराम हूँ।